सम्राट् चन्द्रगुप्त

दीनदयाल उपाध्याय

सम्राट् चन्द्रगुप्त

सम्राट् चन्द्रगुप्त

लेखक
दीनदयाल उपाध्याय

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation
॥ प्रदीपयेम जगत् सर्वम् ॥

प्रकाशक
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी–51, प्रथम तल, हौजखास,
नई दिल्ली–110016
दूरभाषः 011-26524018
फैक्सः 011-46089365
ईमेलः indiapolicy@gmail.com
वेबसाइटः www.indiapolicyfoundation.org

पुनर्प्रकाशन : सितंबर, 2014

© भारत नीति प्रतिष्ठान

ISBN: 978-81-925223-6-4

मूल्यः 50 रुपये मात्र

मुद्रकः प्रिन्ट कनेक्शन, ओखला

प्राक्कथन

भारतवर्ष क्या है? क्या यह मात्र एक भूभाग है जिसे आज के परिप्रेक्ष्य में 'राष्ट्र राज्य' (Nation State) कहते हैं? किसी भी आधुनिक 'राष्ट्र राज्य' को संवैधानिक शासन व्यवस्था, स्वतंत्र अस्तित्व एवं सुपरिभाषित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाशीलता के आधार पर परिभाषित किया जाता है। भारत हो या संयुक्त राज्य अमेरिका या आस्ट्रेलिया, फ्रांस हो या रूस, 'राष्ट्र राज्य' जैसी व्यवस्था सभी देशों को एक समान स्वरूप प्रदान करती है। अधिकांश 'आधुनिक राष्ट्र राज्यों' का इतिहास कुछ शताब्दियों में सिमट जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और आस्ट्रेलिया का इतिहास राष्ट्र–राज्य के निर्माण का इतिहास रहा है। इन देशों ने प्राचीन सभ्यताओं के अंशों को अवश्य आत्मसात किया है परंतु न तो ये किसी प्राचीन सभ्यता की निरंतरता, प्रवाह और अस्तित्व के सारथी बने हैं और न ही उस निरंतरता एवं प्रवाह के परिणाम हैं। इस संदर्भ में भारत और चीन दो अपवाद हैं। चीन एक प्राचीन सभ्यता का प्रतिनिधि जरूर है परंतु चीन के साहित्य, दर्शन एवं संस्कृति का विकास मुख्यतः 1045–256 B.C. (झाओ वंश) में मिलता है। इसके दर्शन एवं संस्कृति में स्थानीयता का तत्व प्रभावी है। सभ्यता का योगदान तब सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होता है जब वह ब्रह्मांड के तत्वों का अन्वेषण करती है। रचना भले ही स्थानीय परिवेश में हो परंतु जब चिंतन का फलक देश, काल एवं तात्कालिक परिस्थिति तथा परिवेश से निर्देशित नहीं होता है, तभी वह पीढ़ियों के

वैश्विक दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। देश एवं काल की सीमाओं से परे ऐसे दर्शन का विकास क्रमागत एवं चक्रीय रूप (वाद–प्रतिवाद और संवाद) में होता है।

जिस भूमि को भारतवर्ष कहा जाता है उसका इतिहास राजवंशों या संघर्षों की गाथा के द्वारा नहीं अपितु एक उतरोत्तर उर्ध्वगामी दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास के द्वारा जाना जाता है। भारत की बौद्धिक व दार्शनिक उपलब्धियां किसी व्यक्ति, स्थान, जाति, धर्म और संप्रदाय को नहीं अपितु संपूर्ण ब्रह्मांडीय चेतना को समर्पित हैं। वेद, पुराण, उपनिषद् एवं गीता आदि ग्रंथों की सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता ने इन्हें चिरंजीवी बना दिया है। दार्शनिक ज्ञान की इसी व्यापक परिधि ने भारतवर्ष को समन्वयवादी सभ्यता का स्वरूप प्रदान किया है। आघात सहने और आक्रमणकारियों को भी पचा जाने की चुम्बकीय क्षमता के कारण भौतिक पराभव की अवस्था में भी हिन्दू–सभ्यता की चमक, आकर्षण और प्रेरक क्षमता कभी कम नहीं हुई। आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रगति के साथ अखंड राजनीतिक चेतना के अभाव में समय–समय पर इस भूखंड और संस्कृति को आघात सहना पड़ा। सभ्यताओं के संघर्ष में भारतवर्ष की संस्कृति को सबसे अधिक क्षति अपने कालानुक्रम (Chronology) के पराभव से हुई है। आज भारतवर्ष के इतिहास, संस्कृति, दर्शन व बौद्धिक प्रवाह के कालानुक्रम को मापने के लिए जिन प्रतिमानों का उपयोग किया जाता है उनके कारण इस संपूर्ण इतिहास, संस्कृति तथा दर्शन प्रणाली को पश्चिमी कालगणना एवं कालानुक्रम के एक विशेष सीमा में बंधकर परिभाषित होना पड़ता है। परिणामस्वरुप हमें अपने ही ऐतिहासिक तथ्यों को कपोल–कल्पित (Myth) मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

जिन सभ्यताओं में संस्कृति, कोरे दार्षनिक विमर्ष एवं नितान्त भौतिकवाद की अनुयायी रही है, उनमें राज्यों के पराभव के साथ ही वह भी अभिलेखागार या मात्र ऐतिहासिक महत्व का विषय बनकर रह गई। ऐसी दार्षनिक एवं बौ़द्धिक क्षमता सभ्यताओं के पराभव को रोकने में भी अक्षम सिद्ध होती है। रोम की सभ्यता का पतन इसका उदाहरण है। तात्कालिकता के स्तम्भों पर खड़ी हुई बौद्धिकता सभ्यता के अंतर्विरोधों को समाप्त नहीं कर पाती है। भारत की हिन्दू–सभ्यता इस अर्थ में भिन्न चित्र प्रस्तुत करती है। सभ्यताई प्रवाह में

हमारी आध्यात्मिक–चेतना और लोक–चेतना के बीच का अंतर समाप्त हो गया। यह एक महान उपलब्धि है। इसीलिए जो दार्शनिक थे वे ऋषि व संत भी थे। जब व्यक्ति वाह्य चेतना, भौतिक आकर्षणों एवं तात्कालिक प्रवाहों से ऊपर उठकर जड़–चेतन के अस्तित्व को समझने का कार्य करता है, तो उसमें ऋषित्व उत्पन्न होता है। ऋषित्व और दार्शनिकता दोनों में चोली–दामन का सम्बंध है। अत्रि, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, वशिष्ठ, विश्वामित्र, ऋषभ, याज्ञवल्क्य, कपिल, पार्श्व, सिद्धार्थ, महावीर, कणाद, चार्वाक, पतंजलि, वात्स्यायन और भर्तृहरि आदि ऐसे नाम हैं जिन्होंने ब्रह्मांडीय नियमों को समझने और उसके अनुकूल मानव–जीवन को दिशा देने का काम किया है। इनमें मौलिकता भी है और चक्रीय निरंतरता भी। इसी ने भारत–भूमि को आध्यात्मिक एवं भौतिक चेतना की प्रयोग भूमि एवं ऋषियों व संतों को प्रयोगधर्मी बना दिया है। प्रयोगधर्मिता वैविध्य की जननी होती है और सम्भावनाओं को आधार भूमि प्रदान करती है। इसीलिए सभ्यता एवं संस्कृति उपप्रवाहों एवं उपचेतनाओं को समेटते हुए अपने सनातन स्वरूप में आगे बढ़ती रही है। वाह्य जगत के राजनीतिक–सामाजिक वातावरणों में उत्थान–पतन ने इसके प्रवाह की गति को प्रभावित तो किया है परन्तु प्रवाह की अन्तःऊर्जा ने उसे अपदस्थ होने या उसमें विराम लगने नहीं दिया। यहाँ एक और बात ध्यातव्य है कि मानव–मूल्यों को उदात्त बनाने वाले और उसे ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ने वाले दर्शन को पढ़ने, उसे अपनाने एवं उससे प्रभावित होने के लिए किसी व्यक्ति को अपने भौतिक संसार के खांचों को तोड़ने की बाध्यता नहीं होती है। वह अपनी विरासत में मिली पहचान पर बने रहकर हिन्दू दर्शन के उदात्त मूल्यों से अपने मन, मस्तिष्क, भाव, भावना और जीवन दृष्टि को संवार सकता है। इसीलिए हमारी संस्कृति व्यक्ति/समूह की अपनी पहचान एवं विरासत को मिटाने या बदलने की बात नहीं करती है अपितु विविध रूपों, बहुआयामों और अनन्त सम्भावित स्वरूपों को स्वीकार व अंगीकार करने की क्षमता प्रदान करती है। जब कोई दर्शन और संस्कृति इतनी उदात्त भावना, उदारता, सर्वसमावेशन की क्षमता और विविधताओं को प्रोत्साहित करने, उसे सींचने, संरक्षित रखने और संवर्द्धित करने की ऊर्जा का संप्रेषण करती है तो वह सनातन बन जाती है। भारतवर्ष आज इसी ऋषि–परम्परा से प्रवाहित दार्शनिक–बौद्धिक परम्परा एवं उदात्त जीवन–दृष्टि की नींव पर खड़ा एक आधुनिक राष्ट्र राज्य है।

आज हमारा हजारों वर्षों का इतिहास आधुनिकता की चकाचौंध में न तो ओझल हुआ और न ही निष्प्रभावी। हमारी दार्शनिक–सांस्कृतिक–बौद्धिक ज्ञानराशि का रचनाकाल अवष्य प्राचीन है पर दर्शन एवं दृष्टि नित–नवीन है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष एक बौद्धिक–सांस्कृतिक यात्रा का भी नाम है। भौगोलिक रूप से भारतवर्ष को सन् 1947 के बाद जो स्वरूप प्राप्त हुआ, जो स्वरूप मध्य युग में था और जो स्वरूप प्राचीन युग में था वे तीनों भिन्न–भिन्न हैं परन्तु उनका सांस्कृतिक और सभ्यताई पक्ष समान है। इसलिए भारतवर्ष का अर्थ मात्र भौगोलिक–राजनीतिक रूप से नामांकित भू–भाग न होकर एक संस्कृति, सभ्यता और दर्शन का त्रिकोण भी है।

भारतवर्ष में अनेक राज्य और राजा थे। सभी राज्य एवं उनकी राजनीतिक पद्धतियां एक ही सभ्यता एवं संस्कृति से बंधी हुई थीं। उनके बीच अंतर्विरोधों और अंतःसंघर्षों ने भारतवर्ष की सांस्कृतिक परिधि को कभी कम नहीं होने दिया। परन्तु इसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष को बर्बर, असहिष्णु, बंद मस्तिष्क और विस्तारवादी वाह्य ताकतों के आक्रमण से भौगोलिक और सभ्यताई क्षति का सामना करना पड़ा। ये ताकतें समय–समय पर संस्कृति को नष्ट करने या निगल जाने के उद्देश्य से आती रहीं। परंतु ब्रह्मांडीय चेतना पर आधारित संस्कृति एवं दर्शन को भला कौन समाप्त कर सकता है? अतः ये ताकतें या तो भारत के प्राचीर से टकराकर वापस चली गईं अथवा इसी संस्कृति–सिंधु में समाकर इसका अंग बन गईं।

सांस्कृतिक उदारता और दार्शनिकता के लिए स्वस्थ राजनीतिक परिवेश की भी आवश्यकता होती है। उच्च दार्षनिक स्तर एवं राजनीति के प्रति हिन्दू–मन में उपेक्षा–भाव के बीच के इस असंतुलन को समझने का कार्य चाणक्य ने किया था। वे राजनीतिक कमजोरी, राजनीति में पलायनवादिता और उदासीनता को सभ्यता एवं संस्कृति के लिए आत्मघाती मानते थे। जब–जब भारतवर्ष की राजनीतिक चेतना और संकल्प–शक्ति कमजोर या उपेक्षित हुई तब–तब इसे घोर असहिष्णुता का तांडव देखना पड़ा। चाणक्य राष्ट्र के सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक परिवेश एवं चेतना में संतुलन के पक्षधर थे। उन्हें अच्छी तरह इस बात का ज्ञान था कि मजबूत केन्द्र और राष्ट्र के लिए प्रतिबद्ध शासक के अभाव में भारतवर्ष की आभा क्षीण होती जा रही थी और भूगोल सिमटता जा रहा था। राष्ट्र के प्रति उनकी इसी समझ ने

चन्द्रगुप्त को राष्ट्र नायक बनाया और भारत को एक सूत्र में बांध दिया। भारतवर्ष में एक संगठित, सुव्यवस्थित और सुसंचालित राज–व्यवस्था स्थापित हुई तथा देश अंतर्विरोधों और विघटन की प्रवृत्तियों से मुक्त हुआ। यह ऐतिहासिक कार्य चाणक्य–चन्द्रगुप्त ने किया था।

भारतीय इतिहास के इसी स्वर्णिम अध्याय के नायक चन्द्रगुप्त को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने उपन्यास की विधा में चित्रित किया है। चन्द्रगुप्त के चारित्रिक गुणों एवं शौर्य का वर्णन करते समय वे देशभक्ति, राजनीतिक एकता, राज्य/प्रशासक की नैतिकता एवं जनता की सतर्कता को सहज रूप से परिभाषित करते हैं। इसी क्रम में वे शासक का गुण व अर्थ भी बताते हैं। गुणवान शासक ही राष्ट्र का प्रिय पात्र बन पाता है। दीनदयालजी कहते हैं कि "राम का आदर्श था लोकाराधन न कि लोकशासन"। लोकतंत्र में जनता के प्रति पूर्ण समर्पण ही लोकाराधना है। इसकी प्राप्ति कैसे हो? इसका प्रतिमान क्या है? वे इन दोनों प्रश्नों का उत्तर देते हैं कि "प्रजा की सेवा करने वाले राजा राम को प्रजा ने अपना स्वामी माना था। उनकी भक्ति करना अपना सौभाग्य समझा।"

राष्ट्र–धर्म को श्री मा. स. गोलवलकर (श्री गुरूजी) ने सभी धर्मों (समाज–धर्म, कुल–धर्म और व्यक्ति–धर्म) से श्रेष्ठ कहा है। राष्ट्र के लिए मन–वचन–कर्म से समर्पित होना उस पर कोई ऋण नहीं है अपितु स्वयं को उऋण करने जैसा है। दीनदयाल जी चाणक्य–चन्द्रगुप्त संवाद में लिखते हैं, "चन्द्रगुप्त तुम भूल रहे हो। तुम्हारा व्यक्तित्व अभी मिटा नहीं है। तुम अपने लिये नहीं, भारत के लिए सम्राट् बनोगे। चन्द्रगुप्त सम्राट् नहीं होगा परन्तु भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त होगा। पर्वतक जैसा स्वार्थी तथा महत्वाकांक्षी, फिर वह कितना ही वीर क्यों न हो सम्राट् बनने के योग्य नहीं है। भारत का सम्राट् तो निःस्वार्थ वृत्ति से संयम एवं दृढ़तापूर्वक जनता की सेवा करने वाला व्यक्ति चाहिए। भगवान ने तुमको ये गुण दिये हैं, पर तुम भूल से उन्हें अपना समझ बैठे हो। वे देश के हैं और देश का अधिकार है कि उनका उचित उपयोग करे। तुम सम्राट् बनने, न बनने वाले कौन होते हो?आज देश को आवश्यकता है तो तुम उसकी पूर्ति को सम्राट् बनोगे, कल आवश्यकता होगी तो उसी के लिए तुम्हें भिक्षुक भी बनना पड़ेगा।" व्यक्ति राष्ट्र निर्माण का एक सजीव उपकरण होता है और उसके द्वारा समष्टि के लिए व्यष्टि का समर्पण–भाव ही सकारात्मक

देषभक्ति की पहचान होती है। जब स्वाभाविक रीति से 'अहम्' 'वयम्' में परिवर्तित होता रहता है तब राष्ट्र अपनी अखंड शक्ति और अतुल शौर्य के साथ विष्व मंच पर भूमिका निभा पाता है।

यह लघु उपन्यास राष्ट्र–धर्म के प्रति समर्पण, उदात्त लोकशासन एवं अखंड राष्ट्र की स्थापना को सहज एवं सरल रूप से संप्रेषित करने वाली एक अमूल्य रचना है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में वर्तमान और भविष्य के प्रति महत्वपूर्ण संदेश छिपा है। दीनदयाल जी की यह कृति भारतवर्ष की भू–सांस्कृतिक चेतना को स्थापित करती है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1946 ई. में हुआ था। भारत नीति प्रतिष्ठान (India Policy Foundation) इसे पुनः प्रकाशित कर रहा है।

प्रतिष्ठान इसके मूल प्रकाषक भारत प्रकाषन, नागपुर के प्रति आभार व्यक्त करता है। इस उपन्यास के पुनर्प्रकाषन में सहयोग हेतु सुश्री ममता त्रिपाठी (जवाहरलाल नेहरू विष्वविद्यालय) एवं षिव कुमार धन्यवाद के पात्र हैं।

राकेश सिन्हा

22 सितम्बर, 2014

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में ऐतिहासिक तथ्यों के ढाँचे पर अपनी भाषा का रंग चढ़ाकर चन्द्रगुप्त का चरित्र लिखा गया है। नायक की एकध्येयनिष्ठा ने स्वयं ही उसमें प्राण–प्रतिष्ठा की है। कुछ घटनाओं का वर्णन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे हुए इतिहास से मेल नहीं खाता है। प्रस्तुत यह वर्णन कल्पना के आधार पर न होते हुए अपने प्राचीन तथ्यों तथा भारतीय विद्वानों द्वारा की हुई आधुनिक खोजों के आधार पर है। जिनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है उन्हें सब प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों के वन में भ्रमण कराने की आवश्यकता नहीं है। इतना जानना पर्याप्त है कि यूरोपियन विद्वानों द्वारा प्रयत्नपूर्वक एवं उनका अंधानुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों द्वारा अनजाने में फैलाए हुए अंधकार को नष्ट करने वाले ऐतिहासिक शोध के सूर्यप्रकाश में देखी हुई ये सत्य घटनाएँ हैं।

–दीनदयाल उपाध्याय

वर्ष–प्रतिपदा,
2003 वि. (तदनुसार सन् 1946)

उपोद्घात

पुण्यमयी भारतभूमि की विशाल ऐतिहासिक परम्परा में वैभव और पराभव, उत्कर्ष और अपकर्ष के अनेक कालखंड मिलते हैं। उन्नति और अवनति दोनों ही में उसने अपनी राष्ट्रीय चेतना को जागृत रखा है, दोनो ही स्थितियों में अपनी आत्मा को बलवती बनाया है। पराभव प्राप्त होने पर उसने काल–चक्र की गति को भी बदलने वाले उन कर्मठ वीरों को जन्म दिया जिन्होंने अपनी मनस्विता, स्वाभिमान एवं नीतिनिपुणता के द्वारा राष्ट्रीय आत्मा की सुप्त शक्ति को जगाया। यह शक्ति अन्याय और अत्याचार की भीषण आंधी में भी अपने स्थान पर शान्त मुद्रा से डटी रही और अगस्त्य के समान कठिनाइयों के अलंघ्य विन्ध्याचल को अतिक्रमण करके समुद्र जैसी उद्दंड एवं विशाल शक्ति को भी तीन ही चुल्लू में पान करने में समर्थ हुई। इसी प्रकार इसके वैभव और शांति के काल में वे तत्वज्ञ हुए जिन्होंने आत्मा की ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार करके मानव के कल्याण के लिये सत्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, ऐसा ही एक कालखंड आज से 2400 वर्ष पूर्व हम को मिलता है। इसमें चंद्रगुप्त और चाणक्य के सम्मिलित प्रयत्नों ने समाज की उस रचनात्मक शक्ति का सृजन किया जिसने न केवल अलिक्सुन्दर* को ही भारत से निकाल बाहर किया अपितु एक विशाल साम्राज्य का भी निर्माण किया।

* अलेक्जेण्डर (प्रस्तुत उपन्यास में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अलेक्जेण्डर के लिए अलिक्सुन्दर का प्रयोग किया है।)

चंद्रगुप्त और चाणक्य ने कल्पना के मनोराज्य में जिस विशाल साम्राज्य का मानचित्र खींचा था उसे एक ने अपनी अजेय शक्ति तथा दूसरे ने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर प्रत्यक्ष जगत् में प्रकट कर दिखाया। अलिक्सुन्दर के आक्रमण का भारत में प्रत्येक स्थान पर विरोध हुआ और देश में इतनी शक्ति थी कि वह पश्चिम के महान विजेता (?) को पराभूत कर सकी; परंतु फिर भी भारत पूर्णतः शक्तिशाली नहीं था। समाज असंगठित, विशृंखल तथा व्यक्तिनिष्ठ था। इन अवगुणों के कारण देश की बढ़ती हुई दुर्बलता चंद्रगुप्त और चाणक्य से न छिप सकी क्योंकि वे थे देश की नाड़ी पहचानने वाले चतुर वैद्य। देश की आत्मा के साथ अपनी आत्मा को समरस करने के कारण दुर्बलता की वेदना को उन्होंने अनुभव किया। पर्वतक की विशाल शक्ति जिसने अलिक्सुन्दर के छक्के छुड़ा दिये और उसे मैत्री का हाथ बढ़ाने को विवश किया तथा मगध का अजेय सैन्यबल जिसकी वीरता और शूरता की कहानियां सुनकर ही अलिक्सुन्दर की सेना हिम्मत हार बैठी, ये दोनों ही वास्तव में राष्ट्रीय दृष्टि से कितनी खोखली थीं, यह चंद्रगुप्त और चाणक्य जानते थे। इसीलिये उन्होंने भारत के दौर्बल्य को दूर करके इसे शक्तिशाली बनाने का बीड़ा उठाया। भारत के सम्पूर्ण छोटे–बड़े राज्यों की विजय तथा भारत की सीमा से उसके शत्रुओं को पर्याप्त दूर रखने के लिए गान्धार (अफगानिस्तान), पारस, चीनी, तुर्किस्तान, कुस्तान (खोतान) आदि की विजय भारत को वैभव के शिखर पर पहुंचाने वाले शक्ति–सोपान की पहिली सीढ़ी थी। विजय के पश्चात् साम्राज्य में शांति एवं सुव्यवस्था निर्माण करना इस मार्ग की दूसरी सीढ़ी थी।

चंद्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य इतना सुसंघटित तथा शासन इतना सुदृढ़ था कि विदेशी यवनों को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी। उसके शासन–काल की शांति, व्यवस्था और संपन्नता का चित्र सेलेउक् (सेल्यूकस) के दूत मेगस्थने के वर्णन के जो अंश उपलब्ध हैं उन्हीं के आधार पर खींचा जा सकता है। यथार्थ स्वरूप कितना भव्य होगा इसकी तो केवल कल्पना कर सकते हैं। चंद्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसका विस्तार गंगा के किनारे 15 मील था। राजधानी की विशालता, स्वच्छता एवं वैभव को देख कर ही साम्राज्य के वैभव का अनुमान लगाया जा सकता था। नगर में 450 तो रत्नखचित अट्टालिकायें ही थीं। फिर राजप्रसाद की शोभा और रत्नभण्डार

का तो कहना ही क्या! पण्यवीथिकाओं की स्वच्छता और सजावट अत्यंत ही चित्ताकर्षक थी। छोटी छोटी गलियों में भी स्वच्छता का समुचित प्रबंध था। पाटलिपुत्र उस समय के संसार का प्रमुख नगर था। वहां न केवल दूर के व्यापारी ही वाणिज्य व्यवसाय के लिये आते थे परंतु संसार के सभी राज्यों के राजदूत भी चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में उपस्थित रहते थे।

अपने विशाल साम्राज्य का शासन करने के निमित्त चंद्रगुप्त मौर्य ने उसे पाँच भागों में विभक्त कर रखा था। पूर्वीय भाग का शासन तो राजधानी पाटलिपुत्र से ही होता था परन्तु उत्तर में तक्षशिला और कौशाम्बी, मध्यभारत में उज्जयिनी तथा दक्षिण में महिशूर (मैसूर) प्रतिनिधि–शासन के केन्द्र थे। प्रत्येक प्रान्त तथा केन्द्र में शासन मंत्रियों की एक परिषद् के द्वारा होता था। सम्राट् स्वयं समय–समय पर साम्राज्य भर में दौरा करते थे। देश भर में स्थानीय शासन का भार ग्राम पंचायतों के ऊपर था। नगर में आज की भांति ही स्थानीय शासन–संस्थायें (म्यूनिसिपैल्टियाँ) कार्य करती थीं। स्वच्छता पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता था कि सड़कों पर गंदा पानी फेंकने वालों के लिये बड़े कठिन दण्ड देने की व्यवस्था थी। नगर के समस्त गृह योजनानुसार बनवाये जाते थे तथा घर बनवाने के पहिले स्वास्थ्य–अधिकारी की अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक था। आज के बड़े–बड़े नगरों की भांति पाटलिपुत्र घिचपिच नहीं बसा हुआ था।

भारत में कई बड़ी बड़ी सड़कें मौर्य शासन में बनीं। उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाये गये थे तथा थोड़ी थोड़ी दूर पर यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें और कुँवे बने थे। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक वणिक्गण निर्भय होकर अपना सामान ले जाते थे। चोरी और डाके का भय पूर्णतः जाता रहा था। नगर में लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे। इतना ही नहीं, किसी की चोरी होने पर राजकर्मचारी उसका पता न लगा सके तो राज्य–कोष से उसकी कमी पूरी कर दी जाती थी। सत्य तो यह है कि जब सब प्रकार की सुव्यवस्था और सम्पन्नता थी तब कोई चोरी जैसे गर्हित, शास्त्रनिषिद्ध लोकविघातक एवं लोकनिंद्य कर्म की और प्रवृत्त ही क्यों होता?

राज्य में न्याय का समुचित प्रबंध था। न्याय और शासन–विभाग का कार्य

अलग अलग अधिकारी देखते थे। न्याय के सामने सब समान थे। यहां तक कि राजपुत्र को भी, यदि वह दोषी हो तो, दण्ड दिया जाता था। समाज–विघातक कार्यों के लिये तो बहुत ही कठिन दण्ड दिया जाता था। सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य स्वयं न्याय करता था। इसके लिये प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति सम्राट् तक पहुंच सकता था।

ज्ञान और विद्या के प्रसार की ओर भी सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य ने विशेष ध्यान दिया था। तक्षशिला और नालंदा के विश्वविद्यालय तो चलते ही थे, परंतु समाज और राष्ट्र के हित के प्रश्नों का निर्णय करने के लिए स्थान स्थान पर परिषदें होती थीं, उनमें विद्वानों को यथेष्ट रूप से पुरस्कृत किया जाता था। समाज में समष्टि जीवन की भावना राष्ट्र के जीवन का मूल है यह सम्राट् चंद्रगुप्त को विदित था। इसके लिए भिन्न भिन्न प्रचार साधनों का उपयोग तो होता ही था परंतु कई बातों के लिए तो राज्य की ओर से विशेष नियम बने हुए थे। पड़ोस में आग लगने पर यह समष्टिगत कर्तव्य है कि उसको बुझाने में सहायता दी जाय। इस कर्तव्य की अवहेलना करने वाले को राज्य ओर से कठिन दण्ड दिया जाता था। नगर, तालाब आदि के सार्वजनिक उपयोग के कार्यों में भी सबको सहायता करनी ही होती थी। देश में इस प्रकार की शिक्षा–दीक्षा का प्रबंध था कि लोग व्यक्तिगत हितों के स्थान पर समाज के हितों को ही महत्व देते थे।

सम्राट् चंद्रगुप्त की शासन–व्यवस्था इतनी निर्दोष एवं पूर्ण थी कि पश्चिमी विद्वानों को भी उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ी है। प्रत्येक अच्छी बात का उद्‌गम यूरोप से मानने वालों को आश्चर्य होता है कि आज से चौबीस सौ वर्ष पूर्व मौर्य शासन इतना विकसित स्वरूप कैसे उपस्थित कर सका। आज के विज्ञान के आविष्कारों के न होते हुए भी सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य ने शासन की आधुनिकतम प्रणालियों का उपयोग किया। यदि हम इसका पूर्ण विवरण जानना चाहते हैं तो हमको सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री, सहयोगी एवं गुरू विष्णुगुप्त कौटिल्य के अपूर्व ग्रंथ अर्थशास्त्र को पढ़ना चाहिये। इसमें उन सब विषयों का वर्णन है जिनसे कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली हो सकता है। इसमें किसी तत्ववेत्ता की मनःसृष्टि के काल्पनिक सिद्धांत नहीं हैं किन्तु एक सूक्ष्मदर्शी ऋषि, यथार्थवादी विचारक तथा क्रांतिकारी कर्मयोगी के विचार हैं;

राष्ट्र के उत्थान–पतन के कारणों की विवेचना करके स्वयं राष्ट्र–निर्माण करने वाले कूटनीतिज्ञ तपस्वी के अनुभूत प्रयोग हैं; मनोविज्ञान, राजनीति और अर्थनीति के वे सिद्धांत हैं जो व्यवहार की कसौटी पर कसे जा चुके हैं। एक विद्वान के अनुसार यह ग्रंथ उनकी ओर से देश को दिया हुआ अधिकार–पत्र है, हमारे लिए उपयोगी ज्ञान का भण्डार है।

वैसे तो भारतभूमि सदा ही सोना उगलती रही है परंतु सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के काल की शांति और व्यवस्था के कारण तो यह भूमि सचमुच रत्नगर्भा हो गई थी। चारों ओर सुख और सम्पन्नता का राज्य था। सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य एवं चाणक्य के राष्ट्रीय प्रयत्नों के फलस्वरूप ही भारत महती शक्ति का सम्पादन कर सका जिसके भरोसे सम्राट् अशोक ने राष्ट्रीयता से आगे बढ़कर विश्वकल्याण के मार्ग पर पग बढ़ाया। इस राष्ट्रशक्ति के निर्माता चंद्रगुप्त और चाणक्य में से अपने भुजबल का आश्रय लेकर प्रत्यक्ष पराक्रम करने वाले तथा अंत में इस शक्ति के केन्द्र स्वरूप संसार के सामने प्रकट होने वाले सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य का यह पावन चरित्र है।

1

जिस काल का हम वर्णन कर रहें हैं तब से अब तक पृथ्वी सूर्य के चारों ओर लगभग ढाई हजार चक्कर लगा चुकी है और इसी के भांति भारत का भाग्यचक्र भी न मालूम कितनी बार घूम चुका है। उस समय मगध में महापद्म नन्दों का राज्य था। भारत स्वतंत्र था, यहां का व्यापार खूब बढ़ा चढ़ा था। यहां के बने हुए माल से देश–विदेश के बाजार पटे पड़े थे। हिन्दू शिल्पियों के हाथ में कुछ ऐसी सफाई थी, कुछ ऐसा जादू था कि जिस चीज को वे बनाते थे वही सबका मन मोह लेती थी। राजा भी यहां के कला–कौशल तथा व्यापार को खूब प्रोत्साहन देता था। क्यों न देता? इससे लाभ तो उसके राज्य और देशवासियों का ही होता था। इस बढ़े हुए व्यापार के कारण देश में खूब धन था। राजकोष भी भरा पड़ा था। राजा के पास दस पद्म रुपया होने के कारण ही उसका नाम महापद्म नन्द पड़ा था। अपनी उंगली पर इकाई गिन कर देखो तो और सोचो कि कितना वह था महापद्म रुपया! आज अगर दुनिया के सब आदमियों को यह रूपया बांटा जाय तो एक–एक आदमी के

पास 50 लाख रुपया होगा और अकेले हिन्दुस्थान में ही बांटा जाय तो हममें से हर एक को 2.5 करोड़ रुपया मिले। ओह! कितना होगा वह धन! और कितने सुखी थे उस समय के स्वतंत्र हिन्दुस्थान के लोग। आज तो हिन्दुस्थान में लखपती ही गिनती के हैं फिर करोड़पतियों का तो पूछना ही क्या! बाकी तो हमारी सालभर की आमदनी कुल 56 रू. ही है। इस वैभवशाली मगधराज्य की राजधानी थी कुसुमपुर। यह वही है जो आज पटना कहलाता है। उस समय इसका नाम कुसुमपुर था बाद में यहीं पाटलिपुत्र बसाया गया जो बाद में बिगड़ कर पटना हो गया। कुसुमपुर वास्तव में कुसुमपुर ही था। जैसे भौंरे पुष्प की सुगंध से आकर्षित होकर उसके चारों ओर मंडराते रहते हैं, उसके गुणगान का गुंजन करते हैं, उसके गौरव के गीत गाते हैं तथा कुसुम के रस का पान करके अपनी इच्छा को तृप्त करते हैं; उसी प्रकार कुसुमपुर के वैभव तथा व्यापार के कारण दूर–दूर के यात्री और व्यापारी वहां आते थे, उनका सदा ही जमघट लगा रहता था। वहां के सौंदर्य को देखकर अपनी आंखों को तृप्त करते, वहां के व्यापार से अपनी अभिवृद्धि करके अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते तथा जहां भी जाते कुसुमपुर की कला और उसके धन की कहानी अपने साथ ले जाते। देश–विदेश के राजदूत भी इस राजा के दरबार में उपस्थित होना अपना सौभाग्य समझते थे।

महापद्म नन्द के वंशज बड़ी अच्छी तरह से राज्य करते रहे। राजा होते हुये भी वे अपने आपको प्रजा का स्वामी न समझकर उनका सेवक समझते थे। हमारे यहां राजा का यही आदर्श है। राजा ही प्रजा की भलाई करना और सेवा करना अपना कर्तव्य मानता था। तो छोटे छोटे कर्मचारी भी सदा प्रजा के हितों का ध्यान रखते थे। परंतु यह दशा अधिक दिनों नहीं रही। नन्द वंश का अन्तिम राजा घनानन्द बड़ा ही विलासी हो गया। राजकाज में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था। वह अपना सारा समय नाचगान, आमोद–प्रमोद तथा रंगरेलियों में व्यतीत करता। कभी वसंतोत्सव धूम–धाम से मनाने में रुपया पानी की तरह बहाया जाता तो कभी होलिकोत्सव पर प्रजा का धन बुरी तरह फूंका जाता। राजा अपने को प्रजा के धन का मालिक समझने लगा था। ऐसे व्यसनी राजा को किसी की नेक सलाह भी अच्छी नहीं लगती है। वह तो केवल अपने खुशामदियों के ही वश में रहता है जो उसकी जी–हुजूरी करते रहते हैं।

सौभाग्य से इस राजा का मंत्री कात्यायन बहुत ही योग्य था उसका उपनाम था राक्षस। वह केवल नाम से राक्षस था। वैसे वह ब्राह्मण था, बड़ा ही विद्वान् था, नीतिनिपुण था तथा नन्द के राज्य को बड़ी कुशलता से सम्हाले हुये था। साथ ही वह अत्यंत स्वामिभक्त एवं राजभक्त था। राजा नन्द के हाल देखकर उसको बड़ा दुःख होता था। वह चाहता था कि राजा राजकाज में ध्यान दे परंतु राजा नन्द तो अपने महलों से ही नहीं निकलता था, यहां तक कि मंत्री राक्षस भी उससे बड़ी कठिनता से मिल पाता था।

मंत्री की इतनी योग्यता होते हुए भी राजा के राजकाज में ध्यान न देने के कारण राज्य में चारों ओर गड़बड़ मच गई। प्रजा दुःखी रहने लगी। प्रजारंजन के कारण ही राजा का राजा नाम पड़ा है। राजा नन्द तो प्रजारंजन के स्थान पर अपना ही मनोरंजन करता था। भगवान् राम ने राजा का जो आदर्श रखा था तथा जिसको सभी भारतीय नरेश और राजा घनानन्द के पूर्वज पालन करते आये थे उसको वह भूल गया। राम का आदर्श था लोकाराधन न कि लोकशासन। हां, इस प्रकार प्रजा की सेवा करने वाले राजा राम को प्रजा ने अपना स्वामी माना था उनकी भक्ति करना अपना सौभाग्य समझा। राजा नन्द ही जब प्रजा के लिये अच्छी भावना नहीं रखता था तो प्रजा में भी स्वभावतः उसके प्रति निष्ठा रखने वालों की कमी हो गई। उनके दुःखों को कोई भी सुनने वाला नहीं था। राजा घनानन्द तक न तो किसी की पहुंच ही थी और न उसको इतना अवकाश ही था कि वह अपना राग–रंग छोड़कर दुःख और दर्द की कहानियां सुने। इससे पूर्व नन्दों के शासन–काल में प्रजा जिन अधिकारों का उपभोग कर चुकी थी उनका अपहरण उसको खलने लगा। वह तो सुख, शांति और सम्मानपूर्ण जीवन बिताने की आदी थी परंतु नन्द–राज्य के दिन उसको दूभर होते जाते थे। अपने चारों ओर नन्द के विलासपूर्ण कृत्यों को देखकर प्रजा की नैतिक भावना को ठेस लगती थी और भी अत्याचार देख कर उसकी आत्मा विक्षुब्ध हो उठती थी। आत्म सम्मान की रक्षा करने वाले और उसको मिटाने वालों में स्वाभाविक ही संघर्ष छिड़ गया। जगह जगह आकाश की ओर उठने वाले धुएं ने बताया कि अंदर आग सुलग रही है। इसी धूम्रपुंज में उठते हुये लोगों ने एक भव्य मूर्ति को देखा। यही है हमारा शासक चंद्रगुप्त मौर्य।

2

चंद्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था। प्रारम्भ में यह जाति मोर पर्वत के आसपास रहती थी। चंद्रगुप्त राजा नन्द के यहां एक साधारण सैनिक था परंतु वह था अत्यंत शूर एवं धीर। उसमें देश–प्रेम कूट कूट कर भरा था। अपने आसपास के लोगों में उसका बड़ा आदर था। उसके साथी उसको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। उसने अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग में बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली थी। विशेषकर धनुष–बाण और शूल में तो उसकी कोई भी बराबरी नहीं कर सकता था। उसके साथी उसके अचूक निशाने को देखकर उसे अर्जुन का अवतार कहते थे। परन्तु इन शस्त्रास्त्रों से भी बढ़कर उसके पास एक और बड़ी चीज थी और वह थी उसके हृदय की दृढ़ता, उसकी निर्भीकता, उसका आत्मविश्वास। जब अपने साथियों का ध्यान वह मगधराज्य के अत्याचारों की ओर खींचता तथा उनसे उसका विरोध करने को कहता तो वे, "भैया चंद्रगुप्त, तुम तो उनका विरोध कर सकते हो क्योंकि तुम्हारा शूल शत्रु के पेट की अंतड़ियों को भी खींचकर बाहर ला सकता है, तुम्हारा बाण छिपे से छिपे शत्रु का भी सिर धड़ से अलग कर सकता है परंतु हम क्या खाकर उनका विरोध करें? हम में कहां है इतनी कुशलता?" तब चंद्रगुप्त उनको यही बतलाता कि शस्त्रों की ताकत से दिल की ताकत ज्यादा है। जिसमें आत्मविश्वास है वह दुनियां में सब से अधिक शक्तिशाली है। हम अन्याय और अत्याचार सहन नहीं करेंगे, बस यही भावना हमारे हृदय में होनी चाहिये और यही सब से बड़ी शक्ति है। मनुष्य निर्भीक तो हो, फिर उसे कौन सी शक्ति झुका सकेगी?

एक दिन चंद्रगुप्त और उसके साथी बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। कोई आठ दस तरुण एक वृद्ध को घेरे हुए थे। उनके गठे हुए शरीर और चौड़ी छाती को देखने से पता चलता था कि वे नित्य प्रति व्यायाम करते थे। राजा नन्द के विलास और अत्याचारों का परिणाम अभी तक प्रजा के आहार–विहार पर नहीं पड़ा था। उनका नैतिक आदर्श अभी भी ऊँचा था। दुर्बलता एक पाप समझी जाती थी, इस लिए हर एक आदमी शक्तिशली बनने की प्राणपण से कोशिश करता था। खाने पीने की न तो किसी भी भांति की कमी थी और न कोई इसमें लोभ ही करता था।

इन सब तरुणों के बीच बैठा हुआ वृद्ध उनको पिछले राजाओं के समय का हाल बता रहा था। उसने उन्हें रघु की दिग्विजय का हाल बताया और फिर राम के राक्षसों के वध और रावण के विरुद्ध युद्ध का रहस्य बतलाया।

"तो क्या दादा आप समझते है कि यदि रावण सीता का हरण नहीं करता तो भी राम रावण से युद्ध करते?" उनमें से एक ने पूछा।

"अवश्य करते बेटा! उनका तो उद्देश्य ही भारतवर्ष से सब राक्षसों को, जोकि भारत की सभ्यता और धर्म को मिटाकर नष्ट कर देना चाहते थे, समूल उखाड़ फेंकना था। अगर रावण सीता को लौटा देता तो कोई और कारण युद्ध का ढूंढ़ना पड़ता। उन्हें तो चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करना था। बिना उसके देश कैसे सुख और शांति से रह सकता है।"

"आज तो कोई चक्रवर्ती सम्राट् नहीं है दादा?"

"नहीं बेटा! आज कोई चक्रवर्ती सम्राट् नहीं है; इसीलिए तो सुना है कि अलिक्सुंदर ने भारत पर चढ़ाई करने की सोची है। आज तक भारत पर आक्रमण करना तो दूर, कोई मन में इस बात का विचार भी न ला सकता था," यह कहते कहते उस वृद्ध का गला रुंध गया और सूखी आंखों से भी दो अश्रु–बिन्दु गिर गए।

"दादा! आज भारत में कई छोटे छोटे राजा हैं, क्या वे आपस में मिलकर अलिक्सुंदर से नहीं लड़ेंगे?" विजयगुप्त ने कहा।

"क्यों, मिलेंगे क्यों नहीं?" विनयमित्र बोला, "शत्रु के विरुद्ध तो सबको मिलकर ही लड़ना चाहिये।"

"अरे नहीं विनयमित्र! शत्रु उनसे एक साथ कहां लड़ेगा, वह तो एक एक से लड़ेगा, और यहां के राजा लोग यह कहां समझते हैं कि पड़ोसी के राज्य पर हमला है तो हम भी वहीं जाकर शत्रु का सामना करें। जो दुष्ट प्रकृति के हैं वे तो पड़ोसी पर आपत्ति आई देखकर प्रसन्न होंगे और जो जरा सज्जन हैं वे अपने राज्य को बचाने की फिक्र करेंगे, परन्तु दूसरे की जाकर सहायता नहीं करेंगे," चंद्रगुप्त ने कहा।

"एक और भी तो कठिनाई है चंद्रगुप्त," वृद्ध बोला "ये छोटे छोटे राजा हैं तो एक दूसरे के बराबर, यदि वे मिले तो नेता किसे बनावें। इतनी समझ उनमें कहां है कि ऐसे अवसर पर छोटे बड़े का ख्याल नहीं किया जाता। आज मगध का राज्य ही भारत में सब से बड़ा राज्य है। वह यदि चाहे तो सब राजा उसके माण्डलिक बन जाएं और फिर भारत में एकछत्र राज्य हो जाय। ऐसा राज्य ही अलिक्सुंदर जैसे शत्रु का सामना कर सकता है और कोई नहीं।"

"फिर तो भारत की रक्षा की जिम्मेदारी मगध की है," विश्वगुप्त बोला।

"हां मगध की ही," वृद्ध ने दृढ़ता से कहा। "पर हमारे महाराज को इतनी फुरसत कहां है," वृद्ध ने एक क्षण बाद ही ठण्डी सांस लेते हुये कहा।

"तब तो हम यूनानियों के गुलाम हो जायंगे," वसुमित्र ने व्यग्रता से कहा। यह सुनते ही सब के चेहरे फक पड़ गए; हृदय घड़कने लगा और एकाएक सब के मुंह से निकल पड़ा गुलाम!"..... "यूनानियों के!"

"और इसलिए कि मगध के सिंहासन पर एक अकर्मण्य और विलासी राजा बैठा है," वृद्ध ने जोर देकर कहा।

चंद्रगुप्त का हाथ एकदम तलवार की मूंठ पर गया मानों सामने ही यूनानी उनको गुलाम बनाने आ रहे हों, और वह उनसे लड़ने को उद्यत है। उसकी त्यौरियां चढ़ गई। "भारतवर्ष गुलाम! नहीं, कभी नहीं," उसने सरोष, पर दृढ़ता से कहा।

"कभी नहीं," एक साथ आठ आवाजें गूंज गईं।

"कभी नहीं! पर कैसे?" वृद्ध ने स्मित हास्य के साथ पूछा। एक क्षण को सब चुप हो गए। मानों किसी गहरे विचार में पड़ गये हों। भारत के स्वातन्त्र्य के महान् उत्तरदायित्व का पहाड़ सा बोझ! और धनानन्द के निर्बल कन्धे!! उन्होंने देखा कि वह उस बोझ को नहीं संभाल पा रहा है।

"हम मगध का राजा ही बदल देंगे," अरिमर्दन ने एक ऐसे विजयगर्वित स्वर में

कहा मानों उसने समस्या को हल ही कर दिया हो। सबने अरिमर्दन की ओर देखा। और फिर एक बार चारों ओर देखा। सबकी दृष्टि चंद्रगुप्त पर ठहर गई।

"भैया चंद्रगुप्त हमारे महाराज होंगे," सब एकदम चिल्ला उठे। और दूसरे ही क्षण वह स्थान "महाराज चंद्रगुप्त की जय!" "मगधेश चंद्रगुप्त की जय!" के घोष से गूंज उठा। उस छोटे से दल ने एक ही क्षण में सैनिक चंद्रगुप्त को महाराज चंद्रगुप्त बना दिया। परंतु वे यह नहीं जानते थे कि चंद्रगुप्त को महाराज बनाना इतना सरल नहीं था। एकाएक अमात्य राक्षस अपने चार सहचरों के साथ जब वहां आ धमका तब उनको मालूम हुआ कि जयघोष के द्वारा अपने निश्चय की डौंड़ी पीटना उनके जीवन की सबसे बड़ी भूल हुई।

"यह मगधेश चंद्रगुप्त कौन है सैनिको?" अमात्य राक्षस ने अधिकार एवं रोष भरे स्वर में पूछा "म–हा–राज–चंद्रगु–प्त" घृणा के स्वर में उसने दूसरे ही क्षण कहा।

सब सैनिक एकदम भौंचक्के से रह गए। वे क्या उत्तर दें, उनकी समझ में नही आता था। शायद स्वयं महाराज नन्द उस समय आते तो वे उनका सामना करते; उनको आनन्द ही होता कि उनके निश्चय की पूर्ति इतनी जल्दी हो सकी। आज ही, अभी चंद्रगुप्त सच में महाराज चंद्रगुप्त होते। पर यहां तो थे अमात्य राक्षस। उनसे वे क्या कहें। उनसे कहने की न तो उनकी हिम्मत ही थी और न बुद्धि ही सलाह देती थी कि उनका बाल भी बांका किया जाय। क्योंकि यूनानियों को हराने को जहां चंद्रगुप्त जैसे वीर एवं शूर राजा की आवश्यकता थी; वहां राक्षस अमात्य जैसे राज्यकार्य कुशल, लोकप्रिय एवं नीतिपटु मंत्री की भी तो आवश्यकता थी। एक के बिना दूसरा अपूर्ण था।

"अमात्यवर! यूनानी भारत पर आक्रमण कर रहे हैं," अरिमर्दन ने बड़ी हिम्मत करके कहा।

"मुझे ज्ञात है सैनिक!" राक्षस ने एकदम, पर रोषभरे शब्दों में कहा, "परंतु इससे तो सैनिक चंद्रगुप्त महाराज चंद्रगुप्त नहीं हो सकता।"

वे दसों सैनिक बन्दी कर लिए गए। उन पर राजविद्रोह का अभियोग चला। राजा धनानन्द यह सुनकर कि सैनिक चंद्रगुप्त ने राजविद्रोह किया है, आग–बबूला हो गया। उसने आज्ञा दी कि चंद्रगुप्त को फांसी लगा दी जाय। चंद्रगुप्त को मृत्यु का डर नहीं था। वह वीर था, वह जानता था कि देश के लिए मरने का सौभाग्य थोड़ों को ही मिलता है। वह कोई अपने लिए सम्राट् थोड़े ही बनना चाहता था। वह तो भारत को यूनानियों से बचाने के लिए तथा भारत में फिर से शांति स्थापित करने के लिए इस कांटों के मुकुट को ग्रहण कर रहा था। परंतु उसको इस बात का दुःख अवश्य था कि वह इस अन्यायी राजा के हाथ से मारा जायगा पर देश की रक्षा न कर सकेगा। यदि युद्ध में लड़ते–लड़ते मारा जाता तब तो वह वीरगति प्राप्त करता।

परन्तु चंद्रगुप्त को इस प्रकार मरना नहीं था। जनता नन्द से प्रसन्न नहीं थी, वरन् वह तो उसके अत्याचारों से पीड़ित थी। फिर जो स्वयं वीर हैं, स्वदेशप्रेमी हैं, वे ऐसे आलसी और विषयी राजा को कब पसन्द करेंगे। हर एक चाहता तो यही था कि नन्द राजा न रहें; परन्तु वह सोचता कि केवल मैं अकेला ही तो यह चाहता हूँ और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूं। इस तरह उन सबमें अकेलेपन की भावना थी। सब लोग चंद्रगुप्त को अपना रक्षक एवं अगुआ मानने लगे; परन्तु वह भी मन मन में । चंद्रगुप्त ने अभी तक ऐसी कोई योजना तो बनाई नहीं थी कि सबका उसके साथ संबंध आवे। सब एकसी भावना रखने वाले लोग एकत्रित आकर अपने सामूहिक बल का अनुभव करें तथा उस एक के नेतृत्व में रहकर कार्य करें। इसलिए नन्द के विरुद्ध जनमत कितना भी क्यों न हो, वह इस प्रकार के असंघटित समूह के भरोसे राजा नहीं बन सकता था। परन्तु हां, उसको इतना लाभ अवश्य हुआ कि बन्दीगृह की दीवारें उसको अधिक दिनों तक न रोक पाई। रात्रि के घने अंधकार में वह एक दिन भाग निकला। सोता हुआ नंद स्वप्न में चीख उठा और उधर उसकी पहुंच से परे चंद्रगुप्त के रूप में उसकी मृत्यु अट्टहास कर रही थी।

3

आज हम काशी, प्रयाग आदि जैसे बड़े बड़े विश्वविद्यालयों के नाम सुनते हैं। उसी प्रकार से एक विद्यालय प्राचीन काल में तक्षशिला में था। तक्षशिला

पंजाब में है। यह विश्वविद्यालय बहुत बड़ा था, आज के विश्वविद्यालयों से बहुत बड़ा। इसमें दस हजार से भी अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे; आज लखनऊ, काशी, प्रयाग तीनों विश्वविद्यालयों को मिलाकर भी इतने विद्यार्थी नहीं हैं। राक्षस अमात्य ने यहां शिक्षा पाई थी। जब वे यहां पढ़ते थे तब उनके साथ ही एक और ब्राह्मण बालक पढ़ता था। उसका नाम था विष्णुगुप्त। विष्णुगुप्त अत्यंत मेधावी एवं प्रखर बुद्धि का था। परंतु विधाता ने जहां उसको मेधाशक्ति खुले हाथों दी थी, वहां शरीर–सौन्दर्य देते समय अपना हाथ खींच लिया था। उसका रंग काला था, मानों हृदय और मस्तिष्क में स्थान न पा सकने के कारण अज्ञानान्धकार बाहर निकलने का प्रयास कर रहा हो। इस सौंदर्यहीन विष्णुगुप्त तथा राक्षस में बड़ी घनिष्ठता थी, शायद इसलिये कि वे दोनों ही राजनीति और समाजशास्त्र में विशेष रुचि रखते थे। राष्ट्रशक्ति की कारण–मीमांसा पर उनमें खूब चर्चा रहती थी। यह विष्णुगुप्त बाद में चाणक्य या कौटिल्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शिक्षा प्राप्त करके राक्षस मगध जैसे बड़े राज्य का अमात्य बना। परंतु चाणक्य इन झगड़ों से दूर कुटी बनाकर रहता था तथा अपना समस्त समय ज्ञानार्जन में लगाते हुए जो विद्यार्थी उसके पास पढ़ने आते उन्हें पढ़ा देता था।

एक दिन एक शिष्य ने आकर बताया, "आर्य, यवनों ने भारत में प्रवेश कर लिया है।"

आर्य चाणक्य के माथे पर सिकुड़न पड़ गई; विस्फारित नेत्रों से उन्होंने अपने शिष्य की ओर देखा तथा धीरे–धीरे 'यवनों ने भारत में प्रवेश कर लिया है' वाक्य को दुहराया, मानों साथ ही वे किसी गहन विचार में भी पड़े हों।

"क्या भारत का प्रवेश–द्वार किसी ने रोका नहीं?" उन्होंने पूछा।

"सीमान्त पर अवश्य जी–जान से लड़े गुरुदेव! परंतु उनका किला अलिक्सुंदर ने बुरी तरह घेर रक्खा था। इधर तक्षशिला का राजा आम्भिक तो शत्रु से पहले ही मिल गया था। ऐसी दशा में अश्वकों ने अलिक्सुन्दर से सन्धि की प्रार्थना की। उसने उनसे इस शर्त पर सन्धि की कि वे देशी

राजाओं के विरुद्ध उसकी सहायता करें। किले के फाटक खुल गए। अश्वक बाहर निकल आए। कुछ दूर उन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया। उनकी इच्छा थी कि जन्मभूमि भारत में जाकर यवनों के विरुद्ध लोगों को भड़का दें।"

"ठीक ही सोचा उन्होंने, यही नीति है," आर्य चाणक्य बीच ही में बोल उठे।

"पर आर्य! वे ऐसा न कर पाए। अलिक्सुन्दर को इसकी टोह लग गई। एक रात जब वे सो रहे थे तो अचानक उसने उनपर आक्रमण कर दिया, विश्वासघात किया। वीर अश्वकों ने झट से अपनी व्यूह रचना की। स्त्री और बालकों को बीच में किया तथा शेष घेर कर यवनों से लड़ने लगे। परंतु अलिक्सुन्दर की सेना विशाल थी। पुरुष वर्ग काम आया; फिर स्त्रियां लड़ी और अन्त में छोटे छोटे बालक भी," कहते कहते शीलभद्र का सीना तन गया तथा गर्व से मस्तक ऊंचा उठ गया।

"और क्या हुआ शीलभद्र!" आर्य चाणक्य ने पूछा।

"गुरुदेव! आगे तो उसका मार्ग निरापद रहा, परन्तु वितस्ता (झेलम) के तट पर राजा पर्वतक (पोरस) से घोर युद्ध हुआ। अलिक्सुन्दर ने अपना युद्ध कौशल तो बहुत दिखाया परन्तु कुछ चली नहीं। जब झेलम के किनारों पर दोनों ओर की सेनाएं आमने सामने खड़ी थीं तब अलिक्सुन्दर ने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि बरसात में वह नदी पार नहीं करेगा तथा रसद इकट्ठा करना शुरू कर दिया। परन्तु एक अंधेरी रात में बीस मील ऊपर चलकर उसने झेलम पार की तथा रात में ही आक्रमण कर दिया। पर्वतक की सेना कोई अचेत नहीं थी। आक्रमण का करारा जवाब दिया गया। घोर युद्ध हुआ। अभी तक यवन सेना को कहीं गजसेना का सामना नहीं करना पड़ा था। पर्वतक के हाथियों ने बुरी तरह यवन सेना को कुचला। अपनी सूँड़ से लपेट लपेट कर अश्वारोहियों को पृथ्वी पर पछाड़ दिया। बहुतों को सूंड में लपेट कर ऊंचा उठा देते थे तथा महावत झट से उनका सिर काट देते थे। पृथ्वी पर पटक पैर से रौंद पाताल लोक पहुंचाना तो मानों उनका खेल ही था। अलिक्सुन्दर ने जब सेना में यह त्राहि त्राहि देखी तो वह बहुत ही घबड़ाया उसने अपनी बची–खुची सेना को भी दूसरे किनारे से बुलवा लिया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अंत में उसने हारकर पर्वतक के सामने मित्रता का हाथ बढ़ाया।"

"तो अलिक्सुन्दर पराजित हुआ" आर्य चाणक्य ने प्रसन्न होकर कहा।

"हाँ आर्य! पराजित तो हुआ, परंतु उसके पराजय से भारत को कोई लाभ नहीं हुआ। उसकी गति अभी तक नहीं रुकी है। उसने देखा कि पर्वतक एक महत्वाकांक्षी राजा है; अतः उसने प्रस्ताव किया कि चलों हम दानों आगे चलकर भारत को जीतें, तुम भारत के सम्राट् बनना और मैं विश्व का सम्राट्।"

"कितना अबोध है पर्वतक! राजनीति से कोरा!!" आर्य चाणक्य विक्षुब्ध होकर बोले।

"अब अलिक्सुन्दर आगे बढ़ रहा है आर्य! उसकी सेना ने गांव गांव में अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है; कई गांव जला डाले हैं। जो जरा भी सिर उठाता है उसका वध कर दिया जाता है। गांव लूटे जा रहे हैं, जबर्दस्ती से लोगों से धन और सेवा ली जा रही है। यवन नन्हें नन्हें बछड़ों की बलि देकर अपने उत्सव मना रहे हैं। गोवंश का ह्रास हो रहा है। आर्य! ऐसे अत्याचार तो आज तक कभी नहीं सुने," शीलभद्र ने जरा तेज होकर कहा।

आर्य चाणक्य मौन थे। कुछ देर वे इसी प्रकार बैठे रहे। उनकी मुखमुद्रा और भावभंगिमा से यह मालूम पड़ता था जैसे उनके मस्तिष्क में कोई विचार बड़ी तेजी से चल रहा है। अंत में वे बोले, "वत्स शीलभद्र! महाराज पर्वतक द्वारा अलिक्सुन्दर का हराया जाना तो अच्छा ही रहा। यवनपति अलिक्सुन्दर को भी पता लग गया होगा कि हिन्दुओं से लोहा लेना कितना कठिन है। इससे उसकी सेना की यह धारणा तो निर्मूल हो गई कि वह अजेय है। उनका आत्मविश्वास अवश्य ही हिल गया होगा। परंतु इसको बिलकुल उखाड़ कर फेंकना है। यह काम तुमको करना होगा। तुम पर्वतक की सेना में प्रवेश करो। उसे सैनिकों द्वारा अलिक्सुन्दर की सेना में यह प्रचार करो कि मगध की सेना अत्यन्त विशाल एवं शक्तिशाली है। दुनियां में उसका कोई सामना नहीं कर सकता, और फिर वहां के हाथी तो पर्वतक के हाथियों से चौगुने अधिक है। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनके लिये एक अलग नगर बसाया गया है। वहां के मंत्री राक्षस की एक अलग ही सेना हैं जिसमें राक्षस ही राक्षस हैं जोकि मनुष्यों को जिंदा ही खा जाते हैं। पानी तो इतना बरसता है

कि महीनों बंद नहीं होता। मगध तक पहुंचने में अभी 180 नदियां और पार करनी पड़ेगी जिनमें बहुत सी तो ऐसी हैं कि जिनमें डूबते देर नहीं लगती; आदि आदि। इससे उसकी सेना में भय का संचार होगा।"

"यह असत्य भाषण मैं कैसे करूंगा आर्य।"

"यह समय सत्य असत्य के विचारने का नहीं है वत्स! अपने राष्ट्र का कल्याण और उसकी स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सत्य है। आज तो इस झूठे सत्य को लेकर अकर्मण्य बन कर बैठ जाओगे, कल समस्त देश पर विदेशी यवन म्लेच्छों का राज्य हो जायगा; उनके अत्याचार और उनका गोवध, क्या यह सत्य होगा। जाओ यही सत्य है और इसे करो। मैं तब तक मगध जाता हूं और अलिक्सुंदर के स्वागत की तैयारी करवाता हूं। ऐसा स्वागत होगा जैसा कहीं नहीं हुआ होगा।"

"आर्य मगध से एक सैनिक आया हुआ है। वह भी लोगों को समझाता रहता है कि उनको यवनों का विरोध करना चाहिए और एकदम भारत से बाहर निकाल देना चाहिए। पर्वतक को वह बहुत बुरा भला कह रहा था। कहता था कि वे यवनों के चंगुल में फंस गये हैं। उन्हें भारत का सम्राट् बनना था तो स्वयं अपनी शक्ति से बनते। यवनों की सहायता करके उनके द्वारा भारत को पराधीन करवाना एक हिन्दू को शोभा नहीं देता।"

आर्य चाणक्य की आंखों में एकदम उत्सुकता की चमक आ गई। "वत्स! एक बार उसको मुझसे मिला दो। अवश्य ही वह हमारे लिये उपयोगी होगा," आर्य चाणक्य ने कहा।

"आर्य! अभी जाता हूं, वह यहीं कहीं लोगों से बातचीत कर रहा होगा। उसमें कुछ ऐसा जादू है कि जिससे एक बार बात करता है उसे अपनी ओर खींच लेता है।"

"निःस्वार्थ देशप्रेम ही वह जादू है शीलभद्र! अच्छा लाओ तो उस जादूगर को। देखूं तो कैसा जादू है उसका।"

4

गुरू को प्रणाम करके शीलभद्र चला गया। आर्य चाणक्य के मन में आज विचारों का तूफान मचा हुआ था। भारत में एक विदेशी राजा का प्रवेश और वह भी यहां के राजा से हारने के बाद। उनको मन ही मन क्षोभ एवं क्रोध हो रहा था पर्वतक की मूर्खता पर। "शत्रु को तो जड़ मूल से उखाड़ फेंकना चाहिए यह नीति कहती है। उसका घर में घुसना, फिर चाहे वह अपने को कितना ही हितू क्यों न सिद्ध करे, हानिकारक ही है। खैर अब पिछली भूल पर रोने से क्या लाभ, उन्होंने मन ही मन कहा, "हां आगे का प्रबन्ध करना चाहिए।" उन्होंने निश्चय किया कि मगध जाकर वहां के जनमत एवं सेना को अलिक्सुन्दर के विरूद्ध करेंगे ही, परंतु उसके जीते हुए प्रदेशों में भी विद्रोहाग्नि को भड़का कर उसे दोनों ओर से घेरकर पीस देंगे। इसी प्रकार की बहुत सी योजनाएं उनके मस्तिष्क में घूमती रहीं।"

लगभग दोपहर होने पर शीलभद्र ने चन्द्रगुप्त के साथ कुटी में प्रवेश किया। उसने देखा कि गुरू चाणक्य को वह जिस स्थिति में छोड़ गया था उसी में अभी तक बैठे हैं तथा किसी गहन विचार में मग्न हैं। शीलभद्र और चंद्रगुप्त दोनों ने प्रणाम किया और बैठ गए। चंद्रगुप्त मन ही मन यह सोचने लगा कि इस काले कलूटे ब्राह्मण ने जाने क्यों मुझे बुलवाया है। कहीं राक्षस ने इसको मेरी खबर लाने तथा पकड़ लाने को तो नहीं भेजा है अथवा कोई यवनों का गुप्तचर तो नहीं है, यह विचार उसके मन में आते ही उसने अपनी तलवार की ओर देखा और फिर निश्चिन्तता से बैठ गया। कितना अधिक था उसका आत्मविश्वास।

आर्य चाणक्य ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा, "सैनिक? आज अलिक्सुंदर मगध जीतने की लालसा से उस पर आक्रमण कर रहा है और तुम मगध छोड़कर यहां विचरण कर रहे हो। क्या तुमको अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है? क्या तुम यह नहीं समझते कि मगध के हारने से समस्त भारत परतन्त्र हो जायगा?"

"मुझे अपने कर्त्तव्य का भी ज्ञान है और मैंने भारत की स्वतंत्रता परतंत्रता के प्रश्न पर भी विचार किया है विप्रवर!" चंद्रगुप्त ने उसी प्रकार गंभीरता से उत्तर दिया।

"फिर यहां क्यों आए हो? यदि हर एक सैनिक अपनी इच्छा से इधर उधर घूमता रहेगा तो क्या मगध की रक्षा हो सकेगी?"

"क्यों नहीं होगी। मगध कोई पारस या मिश्र थोड़े ही है जो इस गर्व से फूले स्वयं ही अपने को विश्वविजेता कहने वाले अलिक्सुन्दर की एक ही चोट में अवनत हो जाए," चंद्रगुप्त ने बहुत ही सोच समझकर कहा। चंद्रगुप्त ने सोचा कि यदि इस ब्राह्मण के सम्मुख मगध की दुर्बलता का वर्णन किया और यदि यह कहीं यवन सेना का गुप्तचर हुआ तो अलिक्सुन्दर का और हौसला बढ़ जाएगा। चंद्रगुप्त को धनानन्द ने फांसी की सजा दी थी परंतु फिर भी वह नहीं चाहता था कि यवनेश अलिक्सुन्दर मगध पर आक्रमण करे। कितना उत्कृष्ट तथा सुलझा हुआ था उसका देशप्रेम। और यही देशप्रेम है किसी भी व्यक्ति की बहुमूल्य निधि।

आर्य चाणक्य चंद्रगुप्त से बातचीत करते करते चंद्रगुप्त को बड़ी पैनी दृष्टि से देख रहे थे। उसका देशप्रेम उनसे छिप न सका और इसलिए इधर उधर की बातचीत करने की अपेक्षा उसके सम्मुख उन्होंने अपना हृदय खोलकर रख देना उचित समझा। वे बोले "सैनिक! अलिक्सुंदर के विरुद्ध मगध की सेना भली भांति लड़ सके, इतना ही नहीं, उसको वह मगध पहुंचने के पहिले ही रोक दे तथा खदेड़ कर देश के बाहर निकाल दे, इसके लिए मैं मगध जाऊंगा। क्या तुम मेरी कुछ सहायता कर सकते हो?"

यह सुनकर चंद्रगुप्त को भी आर्य चाणक्य की सत्यता पर विश्वास हो गया, क्योंकि शब्दों से भी अधिक आर्य चाणक्य के स्वर से पता चलता था कि वे यवनों को भारत से बाहर निकाल देने के लिए कितने तुले बैठे हैं। चंद्रगुप्त ने उनको अपना परिचय दिया तथा महाराज धनानन्द के समस्त अत्याचारों का पूरा वर्णन किया; वह क्यों भागकर आया है यह सब बताया।

यह सुनकर आर्य चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बड़े ध्यान से देखा और फिर ऐसे सिर हिलाया मानों उन्होंने कोई दृढ़ निश्चय किया हो। उन्होंने देखा कि चंद्रगुप्त अवश्य ही मगध का सम्राट् होने के योग्य है। परंतु फिर भी आज तो मगध के सम्राट् पद से अधिक महत्व का कार्य था यवनों को देश से

निकालना। चंद्रगुप्त ने उनको बताया था कि मगध का राजा तो इतना विलासी है कि वह इस बात की कोई चिन्ता ही न करेगा। "पर उसका मंत्री राक्षस तो है। वह जैसे और सब काम देखता है वैसे यह कार्य भी करेगा," आर्य चाणक्य ने कहा।

"हाँ आर्य! अमात्य राक्षस तो हैं परंतु वे तो इतने स्वामिभक्त हैं कि बिना नन्द की आज्ञा के कुछ करेंगे ही नहीं, और नन्द आज्ञा देगा नहीं," चंद्रगुप्त ने बतलाया।

"फिर भी जाना तो चाहिए ही। राक्षस मेरा सहपाठी है। देशभक्त भी है। अवश्य ही वह मेरा कहना मानेगा।" ऐसा कहकर आर्य चाणक्य ने यह निश्चय किया कि चंद्रगुप्त यहीं रहकर अलिक्सुंदर के मार्ग में जितनी बाधाएं डाल सके डाले तथा वे मगध जाकर वहां सहायता प्राप्त करके यमुना से आगे तो अलिक्सुंदर को किसी भी प्रकार न बढ़ने दें तथा शीघ्र ही देश से निकाल बाहर करें।

5

उसी क्षण आर्य चाणक्य कुसुमपुर के मार्ग पर दिखाई दिये। वे निरंतर बढ़ते जाते थे। मार्ग की वर्षा और धूप उनको नहीं रोकपाती थी। उनको तो बस यही धुन थी कि कब मगध पहुंचे। यदि कहीं एक कदम भी रुक जाते तो मालूम होता कि बस अब यवन आगे बढ़ गए हैं। एक एक क्षण जो विदेशी एवं अत्याचारी यवन इस देश में बिता रहे थे वह उनको एक एक युग के बराबर मालूम होता था। और फिर उसकी पीड़ा तो उनको असह्य थी। अपने ध्येय के प्रति आवश्यकता है इतनी लगन एवं तन्मयता की। थके मांदे, बराबर वे डग बढ़ाए चले जाते थे। उनके कदम रुके जाकर मगध के राज्य–कार्यालय के द्वार पर ही।

अमात्य राक्षस को तक्षशिला के उस ब्राह्मण के आगमन की सूचना दी गई। अमात्य ने एकदम उनको अंदर बुलवाया; देखते ही दोनों का पिछला प्रेम उमड़ आया। राक्षस ने दौड़कर चाणक्य को बाहुपाश से जकड़ लिया। दोनों बड़े प्रेम से मिले। परन्तु चाणक्य तो अपनी बात कहने के लिए अधीर हो रहे

थे। "कुछ देश की भी खबर है, अमात्य राक्षस?" चाणक्य ने पूछा।

राक्षस प्रश्न को समझ गया। "बोला हाँ, अलिक्सुन्दर ने भारत में प्रवेश कर लिया है। पर्वतक से हारकर फिर उसी की सहायता से पंचनद के राजाओं को हरा रहा है।"

"वह मगध पर भी तो आक्रमण करेगा अमात्यश्रेष्ठ!"

"उसके लिए मगध की सेना तैयार है। मगध की प्राण–पण से रक्षा की जाएगी।"

"परन्तु कब? कब वह कुसुमपुर को आकर घेर लेगा? आज पंचनद के छोटे राज्यों की रक्षा भी मगध की ही रक्षा है, और फिर देश से यवनों को बाहर करने का कार्य भी तो मगध ही का है!"

"इस सब के लिए तो महाराज से सलाह करनी होगी, विष्णुगुप्त!"

अंत में यह तय हुआ कि दूसरे दिन महाराज से सलाह ली जावे। चाणक्य का भी अमात्य राक्षस के साथ चलना तय हुआ। चाणक्य तो चाहते ही थे कि आज ही तथा अभी महाराज के पास चला जाय, परन्तु राक्षस ने बतलाया कि कल से पहिले तो महाराज से भेंट हो ही नहीं सकती। यह सुनकर चाणक्य को चंद्रगुप्त की बात याद आ गई। उनके माथे पर बल पड़ गए। सोचने लगे कि जिस राजा से उसका मंत्री भी इतने महत्व के कार्य के लिए समय पर नहीं मिल सकता, वह राजा भारत के इस महान राज्य के योग्य कदापि नहीं है।

6

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अमात्य राक्षस तथा चाणक्य राजमहल के द्वार पर पहुंच गए। महाराज को सूचना भेजी गई। बड़ी देर बाद उत्तर आया कि बुला लाओ। दोनों अंदर गए। महाराज उस समय अपने प्रमोदोद्यान में झूला झूल रहे थे। नर्तकियों का झुण्ड का झुण्ड उन्हें घेरे खड़ा था। मदिरा–पात्र पास

ही रखा था। अमात्य को देखते ही महाराज कहने लगे, "अमात्य, आप हमको व्यर्थ ही कष्ट देते हैं। आप ही क्यों नहीं सब काम कर लेते? ऐसा क्या बड़ा काम आ पड़ा? क्या होलिकोत्सव का अभी से प्रबंध करना है? ओह! अरे (चाणक्य की ओर जरा तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखकर) यह ब्राह्मण कौन है? साक्षात् काल ही मालूम होता है।"

आर्य चाणक्य इस अपमानपूर्ण वाक्य को सुनकर एकदम क्रोध से लाल हो गए। उनकी आंखों में खून उतरने लगा, परन्तु अत्यन्त सावधानी से उन्होंने प्रयत्नपूर्वक अपने क्रोध को दबाकर वही शांत–मुद्रा बना रक्खी। वे जानते थे कि इस समय यवनों को भारत से खदेड़ने के लिए मगध की सहायता चाहिए और उसके लिए राजाज्ञा प्राप्त करनी आवश्यक है। यह एक राष्ट्रकार्य है। राष्ट्रकार्य में इस प्रकार के मानापमान की चिंता नहीं की जाती। उनके स्वाभिमान को ठेस अवश्य लगी। परंतु उससे भी बढ़कर प्रश्न था राष्ट्र के स्वाभिमान का।

"महाराज! यह मेरे एक सहपाठी हैं; तक्षशिला से आए हैं। अलिक्सुन्दर ने पर्वतक की सहायता से पंचनद के राजाओं से युद्ध प्रारम्भ कर दिया है तथा वह मगध आने वाला है।"

"मगध की सेना तो तैयार है अमात्य! नई सेना की भर्ती शुरू कर दो और देखो हमारे लिए कुसुमपुर से दूर पूर्व में एक महल झट पट बनवा दो, हम तो वहीं रहेंगे। लड़ाई से दूर, एक दम दूर क्यों नर्तकियों! ठीक है न?"

"मगध की रक्षा के पहिले तो पंचनद के राज्यों की रक्षा आवश्यक है महाराज!" आर्य चाणक्य ने बीच ही में कहा।

"पंचनद के राज्यों की रक्षा हमारी सेना क्यों करे, ब्राह्मण! तू चाहता है कि हमारी सेना तो सब वहां चली जाय और हम मगध में अकेले रह जायं," नन्द ने कहा।

"महाराज, अलिक्सुन्दर का आगे बढ़ना भारत और मगध के लिए घातक होगा और फिर उसको भारत के बाहर निकालना भी तो मगध राज्य का कर्त्तव्य है," आर्य चाणक्य ने कहा।

"हा! हा! हा! यह ब्राह्मण हमको कर्त्तव्य सिखाने आया है। नर्तकियों! जरा हमारे गुरूजी को देखना तो सही। काल भैरव के अवतार को जरा नमस्कार तो करो हा! हा! हा!" महाराज नन्द ने व्यंग एवं तिरस्कार युक्त शब्दों में कहा।"

आर्य चाणक्य फिर एक बार लहू का घूँट पीकर रह गए। उन्होंने शांतिपूर्वक कहा, "ब्राह्मण का तो यह कार्य ही है महाराज! आप यदि अब भी चुप बैठ रहे तो यवन अवश्य एकदिन मगध को नष्ट कर देंगे। फिर न तो मगध राज्य रहेगा और न मगध का राजा।"

विवेकहीन व्यक्ति की भांति नन्द यह नहीं समझ पाया कि उसका हित भी राष्ट्र के हित में है। आर्य चाणक्य की यह चेतावनी भी उसे बुरी लगी। वह बोला, "तू हमको शाप देकर डराना चाहता है ब्राह्मण! नर्तकियो! इस ब्राह्मण को धक्के मार कर निकाल तो दो! धृष्ट कहीं का!"

नर्तकियां आगे बढ़ीं। राजा के शब्दों ने आर्य चाणक्य की आशा को भग्न कर दिया। अपमान भरे इन शब्दों से उनका हृदय बिंध गया। उनका सात्विक क्रोध भड़क उठा। एक दम उन्होंने अपनी चोटी खोलकर प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्द राजा का उच्छेद करके राष्ट्रहितैषी एवं कर्तव्यनिष्ठ राजा गद्दी पर नहीं बैठा दूंगा, तब तक चोटी नहीं बाँधूँगा।

नन्द ने इसको ब्राह्मण का प्रलाप समझा और फिर एक बार नर्तकियों के साथ उच्च अट्टहास कर उठा।

आर्य चाणक्य एकदम राजमहल से बाहर हो गए। अमात्य राक्षस हतप्रभ सा यह सब कृत्य देखता रहा। वह क्या करे उसकी समझ में नहीं आया। चुपचाप वह भी राजमहल से निकल आया। बाहर आकर आर्य चाणक्य से बोला, "मित्र चाणक्य! व्यसनाधीन व्यक्ति की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, उसे क्षमा करो।"

"परन्तु राजा का व्यसनी होना तो देश के लिए घातक है अमात्यवर! नन्द का उच्छेद अपने लिए नहीं, राष्ट्र के लिये करना होगा। देखते नहीं,

अलिक्सुन्दर एक के बाद एक छोटे छोटे राज्यों को हराता जा रहा है। प्रत्येक राज्य का बच्चा बच्चा अपनी स्वतंत्रता के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील है परन्तु उनसे लड़ाई अलग अलग हो रही है। एक छोटे से राज्य की सेना हो ही कितनी सकती है? अलिक्सुन्दर के विशाल सैन्यबल के सागर में वह तरंग सी विलीन हो जाती है। आज देश में वीरता है, शूरता है, अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिये सब कुछ अर्पण करने की शक्ति है परन्तु यदि कमी है तो एक सूत्र की जो सबको एक साथ बांध सके। अखिल भारतीय एकछत्र सम्राट् की आवश्यकता है। यदि यह नहीं हुआ तो भारतवर्ष में यवनों का आधिपत्य सदा के लिये हो जायगा, और यदि इस बार अलिक्सुन्दर लौट भी गया तो फिर कोई और आक्रमण कर देगा। क्या नन्द इस योग्य है? बोलो राक्षस! तुम्हीं बोलो।"

राक्षस चुप था। फिर चाणक्य ने कहना प्रारम्भ किया, "राक्षस! तुम्हारे हृदय में देशभक्ति है, मैं जानता हूं। जब हम तुम साथ पढ़ते थे तो तुम सदैव देशभक्ति की बातें किया करते थे। आज यवनों का आक्रमण देश पर सबसे बड़ी विपत्ति है। देश के भाग्य का निबटारा वर्षों के लिए हो रहा है। तुम इस मगध राज्य के अमात्य हो। राजा व्यसनी है। परन्तु तुम्हें तो अपने कर्तव्य का ज्ञान है। शक्ति तुम्हारे ही हाथ में है। आओ अपनी सेना को लेकर शत्रुओं को भारत सीमा से बाहर निकाल दें।"

"परन्तु मित्र! क्या यह राजद्रोह नहीं होगा?" अमात्य ने दबी जबान से कहा।

"अमात्यवर! राजा राष्ट्र के लिये है न कि राष्ट्र राजा के लिए। यदि अलिक्सुन्दर आज तुम्हारा राजा हो जाए, तो उसकी भक्ति भी तुम राजभक्ति मानकर करोगे? राजभक्ति वही गुण है जहां वह राष्ट्र और देशभक्ति की पोषक हो? अन्यथा वह पाप है, सर्वथा त्याज्य है।"

"परन्तु मैंने राजा का इतने दिनों तक अन्न खाया है चाणक्य!"

"छिः छिः! तुम कैसी अबोध बालक जैसी बातें करते हो। अन्न तो तुमने खाया है भारत भूमि का। आज उस पर आपत्ति है। आओ, अपने अन्न का भार चुकाओ।"

"मैं असमर्थ हूं चाणक्य!" अंत में अमात्य ने कहा।

आर्य चाणक्य की सब आशाओं पर पानी फिर गया। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। हां, चुपचाप एक ओर चल दिए। अमात्य उनको रोके, इतना उसका साहस नहीं हुआ।

7

आर्य चाणक्य लौटकर पंचनद गए। उन्होंने निश्चय किया कि वहीं जाकर वहां के समस्त छोटे राज्यों को संगठित करके अलिक्सुन्दर का एकसाथ सामना किया जाय। परन्तु वहां पहुंचने पर उनको पता चला कि उनके लिए इन सबकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई थी। चंद्रगुप्त ने पहले ही इस साधन का सफल उपयोग कर लिया था। उसने समस्त पंचनद में घूम–घूम कर राजाओं से, उनके सेनापतियों से, गणराज्यों के प्रतिनिधियों से बातचीत की। उनको असली स्थिति समझाई। स्वयं राजा पर्वतक से मिला। उसके हृदय में दबे हुए देश प्रेम को उभाड़ा। उसने उनसे कहा, "महाराज, आप जैसे वीरों को जन्म देकर भारतभूमि अपने को धन्य समझती है। जिस अलिक्सुन्दर को गर्व था कि दुनियां में उसको कोई नहीं हरा पाया, उसका गर्व आपने ही चूर किया। परन्तु महाराज! वह आस्तीन का सांप बनकर अपने घर में आ घुसा है। आप क्या सोचते हैं कि मगध–विजय करने के बाद वह आप को राज्य करने देगा? अवश्य ही वह किसी न किसी प्रकार छल–छिद्र से आप का वध कराएगा। वैसे भी यह कहां तक उचित है कि आपने जिसको पराजित किया हो वह तो बने विश्वसम्राट् और आप उसके आधीन रहें भारतसम्राट्?"

यह बातें सुनकर पर्वतक की आंखे खुल गई। उन्होंने अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। पंचनद के छोटे–छोटे राज्य भी मिलकर अलिक्सुन्दर की सेना को त्रस्त करने लगे। शीलभद्र ने भी चाणक्य की आज्ञानुसार अपना कार्य किया। अलिक्सुन्दर के सिपाहियों की हिम्मत टूट गई। मगध नाम सुनते ही उनको जूड़ी चढ़ती थी। बस, एक दिन सबने निश्चय किया कि हम

अब आगे नहीं बढ़ेंगे वरन् अपने घर पर लौट चलेंगे। अलिक्सुन्दर ने बहुत कुछ समझाया बुझाया। मदिरा छोड़ दी, तीन दिन तक भोजन नहीं किया, परन्तु कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। अंत में हारकर उसने निश्चय किया कि अब घर लौट चलेंगे तथा कुछ दिन रहकर फिर भारत के बचे हुये प्रदेश को जीतेंगे।

आर्य चाणक्य चंद्रगुप्त के प्रयत्नों से अत्याधिक प्रसन्न हुए अब उन्होंने निश्चय किया कि अलिक्सुन्दर को जीवित वापस नहीं जाने देना चाहिये। अतएव वे सिन्धु और मकरान के प्रदेशों में गए। वहां के गणराज्यों को पहिले से ही उसके विरुद्ध उभाड़ दिया। पश्चिमोतर का मार्ग, जिस ओर से वह भारत में आया था, उन्होंने पहिले ही से बन्द कर दिया था, क्योंकि वहां अश्वकों ने विद्रोह कर रखा था। उस ओर से जाने की अलिक्सुन्दर की हिम्मत नहीं थी। सिन्धु और मकरान के मार्ग को भी, वहां के निवासियों को इस आक्रमक के विरुद्ध उभाड़कर, उसके लिए और भी कठिन बना दिया।

अलिक्सुन्दर ने अपनी सेना के दो भाग किए। एक तो समुद्री मार्ग से नियारकस की अध्यक्षता में तथा दूसरा स्वयं उसके साथ मकरान के रेगिस्तान से होकर गया। मल्लियों ने उसको बड़ा तंग किया। यहां तक कि एक तीर उसके वक्षःस्थल पर इतनी जोर का लगा कि अत्यन्त घातक घाव हो गया। जिसके फलस्वरूप यह बेबिलोन जाकर मर गया। पारियात्र–पारवर्ती (बलूची) जातियों ने भी उसको बहुत तंग किया। सैकड़ों सिपाही बिना पानी के मर गए, कई बालू में झुलस गए तथा युद्ध में तो अनेकों मारे गए। अंत में एक दिन वह कह ही उठा, "भारतवर्ष में मैं हर जगह भारतवासियों के आक्रमण तथा कोप का भाजन बना। उन्होंने मेरे कन्धे को घायल किया। गान्धारियों नें मेरे पैर को निशाना बनाया। मल्लियों से युद्ध करते हुए एक तीर की नोक से मेरा वक्षःस्थल छिद गया और गर्दन पर भी गदा का एक तगड़ा हाथ पड़ा। भारत का आक्रमण मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल है।"

इस प्रकार आर्य चाणक्य और चंद्रगुप्त ने मिलकर अलिक्सुन्दर को न केवल भारत से ही निकाला परन्तु निकालते–निकालते भी उसके सैन्य का संहार किया। तथा स्वयं उसको मारने का प्रयत्न किया। बेबिलोन जाकर वह मर गया। परन्तु उसने अपने सेनापति सेलेउक् से अपनी भारतविजय की अभिलाषा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करवा ली।

8

संध्या समय लाल लाल सूर्य अस्ताचल की ओर भागा जा रहा था मानो पश्चिम की ओर पीठ दिखाकर भागते हुए शत्रु की पीठ पर लगा हुआ विशाल रक्तव्रण हो। चहकते हुए पक्षी शत्रु के इस प्रयाण पर आनन्दगान कर रहे थे। अचानक आए हुए इस बवण्डर से एक दिन विपाशा (व्यास) का जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठा था। आज वह भी शांत कलकलध्वनि से बह रहा था और उसके साथ ही सम्पूर्ण देश भी एक संतोष की सांस ले रहा था। परन्तु विपाशा के तट पर बैठे हुए दो व्यक्तियों के मन में अभी शांति और समाधान नहीं था। उनकी मुखमुद्रा से मालूम होता था कि उनका मस्तिष्क किसी उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने में लगा हुआ है।

"अलिक्सुन्दर को अंत में अपने प्राणों से हाथ धोने ही पड़े आर्य!" चंद्रगुप्त ने शांति भंग करते हुए कहा।

"हां वत्स! अलिक्सुन्दर तो भारत आक्रमण के फल को भुगत चुका। संक्रामक रोग का रोगी खुद तो मर जाता है पर अपना रोग दुनियां में छोड़ ही जाता है। उसके कीटाणु हवा में फैल कर दूसरों को अपना शिकार बनाते हैं। आज सेलेउक् भी तो भारत विजय करना चाहता है।"

"विश्वविजय की इच्छा रखने वाले अलिक्सुन्दर की जब यहां दाल न गली तो सेलेउक् क्या खाकर भारतविजय का विचार करेगा?" चंद्रगुप्त ने मुंह बनाकर कहा, "और सुना है आर्य! कि अलिक्सुन्दर के सेनापति सेलेउक् और टालेमी मे भी आपस में उसके साम्राज्य के लिये युद्ध हो रहा हैं।"

"यह सब सत्य है वत्स! परन्तु भारत का कल्याण तो भारत की ही शक्ति से होगा। दूसरों की दुर्बलताओं के सहारे हम कब तक जीवित रहेंगे? भारत में शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने के अपने ध्येय को क्या तुम इतनी जल्दी भूल गए?" आर्य चाणक्य ने कहा।

"नहीं आर्य! नहीं; इस महान् ध्येय को कैसे भुलाया जा सकता है? हां,

अलिक्सुन्दर को भारत से निकाल कर जरा सांस लेने का समय अवश्य मिला है।"

"अभी तो सेर में पूनी भी नहीं कती है चंद्रगुप्त!" आर्य चाणक्य ने व्याकुलता से कहा, "भारत की इस अजेय शक्ति का उषःकाल तो उस समय होगा जब तुम मगध के सिंहासन पर आरूढ़ होओगे। असली कार्य तो अभी आगे पड़ा है।"

आर्य चाणक्य और चंद्रगुप्त दोनों ही अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने लगे। पश्चिमोत्तर, सिन्धु एवं आधुनिक राजस्थान के छोटे छोटे राज्यों पर चंद्रगुप्त का सिक्का जम चुका था। उन्होंने उसको अपने नेता के रूप में देखा तथा उसी के दृढ़ नेतृत्व में अलिक्सुन्दर को भारत से खदेड़ा था। परन्तु एकच्छत्री साम्राज्य निर्माण करने में पर्वतक और नन्द दो बड़ी बाधाएं थीं। भारत में सबसे बड़ा राज्य मगध का ही था, पर पर्वतक का राज्य भी कोई छोटा मोटा राज्य नहीं था; और फिर अलिक्सुन्दर की सहायता से पंचनद के छोटे छोटे राज्यों को जीतकर पर्वतक ने अपने राज्य को और भी बढ़ा लिया था। राजा नन्द विलासी था। उसके जीवन में किसी भी प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं। परन्तु पर्वतक महात्वाकांक्षी राजा था उसकी आकांक्षा थी कि वह भारत का सम्राट् बने। चंद्रगुप्त और चाणक्य दोनों ही उसकी इस महत्वाकांक्षा को जानते थे।

"पर्वतक भारत का सम्राट् बनना चाहता है, जानते हो चंद्रगुप्त?" आर्य चाणक्य ने पूछा।

"हां आर्य! जानता हूं इसीलिए तो उसने अलिक्सुन्दर को पराजित करके भी उससे मैत्री की थी। परन्तु अब क्या है, अब तो अलिक्सुन्दर इस दुनियां में नहीं रहा," चंद्रगुप्त ने कहा।
"अलिक्सुन्दर नहीं रहा तो क्या हुआ, उसका सेनापति सेलेउक् तो है। पर्वतक है भी इतना महत्वाकांक्षी कि अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए सेलेउक् से सहायता लेने में वह संकोच नहीं करेगा। विदेशी को सहायता के लिए बुलाना तो शत्रु को घर का मार्ग ही दिखाना है।"

"तब तो पहिले पर्वतक से ही युद्ध किया जाय आर्य!" चंद्रगुप्त ने उत्तेजित होकर कहा।"

"नहीं वत्स!" आर्य चाणक्य मुस्कराते हुए बोले, "पर्वतक से अभी युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। नन्द और पर्वतक ये दो कांटे हैं। कांटे को कांटे से ही उखाड़ना बुद्धिमानी का काम है। नन्द तो विलासी, आलसी और कायर है। उसमें किसी भी प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं है। परन्तु पर्वतक वीर एवं महत्वाकांक्षी है। उसको मगध पर आक्रमण करने के लिए उकसाया जाय; वह तैयार हो जायगा। नन्द को वह अवश्य ही पराजित करेगा। परन्तु इसके पहिले कि वह मगध पर अधिकार जमावे, तुम मगध के रक्षक के रूप में प्रकट होकर पर्वतक से युद्ध करना। उस युद्ध में अथवा अन्य किसी षड्यंत्र के द्वारा पर्वतक का वध करना होगा। मगध की जनता तुमको त्राता पाकर अवश्य ही तुम्हारा अभिषेक करेगी। इसके लिए मैं नन्द के विरुद्ध अभी जाकर जन समाज को उभाड़ कर संगठित करता हूं और तुम पर्वतक से मिलकर आक्रमण की तैयारी करो।"

"पर्वतक के साथ इस प्रकार विश्वासघात कहां तक ठीक होगा आर्य! मेरे स्थान पर उसी को भारत सम्राट् बनने दीजिये एक छत्र साम्राज्य ही तो चाहिये। सम्राट् फिर कोई भी क्यों न हो।"

"चंद्रगुप्त तुम भूल रहे हो। तुम्हारा व्यक्तित्व अभी मिटा नहीं है। तुम अपने लिये नहीं, भारत के लिए सम्राट् बनोगे। चंद्रगुप्त सम्राट् नहीं होगा परन्तु भारत सम्राट् चंद्रगुप्त होगा। पर्वतक जैसा स्वार्थी तथा महत्वाकांक्षी, फिर वह कितना ही वीर क्यों न हो सम्राट् बनने के योग्य नहीं है। भारत का सम्राट् तो निःस्वार्थ वृत्ति से संयम एवं दृढ़तापूर्वक जनता की सेवा करने वाला व्यक्ति चाहिए। भगवान ने तुमको ये गुण दिये हैं, पर तुम भूल से उन्हें अपना समझ बैठे हो। वे देश के हैं और देश का अधिकार है कि उनका उचित उपयोग करे। तुम सम्राट् बनने, न बनने वाले कौन होते हो? आज देश को आवश्यकता है तो तुम उसकी पूर्ति को सम्राट् बनोगे, कल आवश्यकता होगी तो उसी के लिए तुम्हें भिक्षुक भी बनना पड़ेगा।"

आर्य चाणक्य बोलते बोलते आवेश में आ गये। चंद्रगुप्त एकदम सहम गया। वह धीरे से क्षमा याचना करता हुआ बोला, "क्षमा कीजिये आर्य! मैंने देश के

सामने अपने स्वार्थों को कोई महत्व नहीं दिया है, पर हां, सर्वांगपूर्ण देश भक्ति की कल्पना अभी तक मेरे सम्मुख नहीं आई थी। आज अवश्य ही मैंने एक नया पाठ पढ़ा है।"

"हां, वत्स! इस पुण्य भूमि भारत के लिए एक पर्वतक नहीं, कितने ही पर्वतकों की बलि देनी होगी। अच्छा, उठो, सब से पूर्व तो वाहिकों को जाकर जगाओं। अलिक्सुन्दर के राज्य में भारत का यह भाग अभी तक है। विद्रोह का यह उपयुक्त समय है। उनकी तथा अन्य छोटे छोटे राज्यों की सेना को संघटित करके पर्वतक के साथ नन्द पर आक्रमण की तैयारी करो"

9

आर्य चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बिदा कर मगध की ओर प्रस्थान किया। आज से कुछ वर्ष पूर्व भी वे वहां भारत से अलिक्सुन्दर को निकालने के लिये मगध–राज नन्द को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराने एवं उससे सहायता की याचना करने गये थे, और आज जा रहे थे, भविष्य में कोई अलिक्सुन्दर भारत की ओर मुख भी न कर सके इसलिये मगध में एक शक्तिशाली साम्राज्य के निर्माण के हेतु नन्द वंश को नष्ट करने। आज वे याचक बनकर नहीं संहारक बनकर जा रहे थे, पर याचना और संहार दोनों ही के पीछे था सात्विक देश प्रेम। रात्रि के निबिड़ अन्धकार में आर्य चाणक्य ने वेष बदले चुपके से कुसुमपुर में प्रवेश किया। राजा नन्द बेखबर अपने राजमहल में पड़ा हुआ था। सर्वनाश इसी प्रकार वेष बदल कर चुपचाप प्रवेश करता है।

कुसुमपुर में उनका निवास नन्द राज्य के लिए घुन का काम करता था। उनका एक एक क्षण उसके राज्य की जड़े खोखली बनाने में व्यतीत होता था। नन्द की सत्ता उनको असह्य हो गई थी। राज्य में आकर नन्द के दुराचारों का प्रत्यक्ष ज्ञान होने के कारण उनको और भी तीव्र वेदना होती थी। ज्यों ज्यों यह वेदना तीव्र होती, त्यों त्यों वे अपने कार्य की गति को भी तीव्र करते। जनता में फैली हुई नन्द विरोधी भावनाओं का उन्होंने पूर्ण लाभ उठाया। मंत्री राक्षस तथा सेनापति भागुरायण के मनमुटाव को अधिक उत्तेजित करके भागुरायण को अपनी ओर मिला लिया। सामन्त शकटार

जिसके कि छः पुत्र राजा नन्द ने वध करवा दिये थे, वह भी इनकी ओर आ मिला।

कुसुमपुर में आर्य चाणक्य सब तैयारी कर चुके थे। चंद्रगुप्त को आक्रमण के लिये कब बुलाया जाय, इसी विचार में बैठे हुए थे कि चंद्रगुप्त का दूत भी आ पहुंचा। वह अभिवादन करके एक ओर खड़ा हो गया। आर्य चाणक्य ने कुशलक्षेम के उपरान्त समाचार पूछे। दूत बोला, "आर्य वाहिक गण आज स्वतंत्र हैं। महाराज चंद्रगुप्त ने उनको स्वातन्त्र्य संदेश सुनाया, उन्होंने उनमें नवजीवन का संचार कर दिया। उनकी विद्रोहाग्नि भभक उठी और उसमें उनकी दासता तथा यूनानी क्षत्रप दोनों ही भस्मीभूत हो गए। अब महाराज ही उनके अधिपति हैं।"

"यह तो ठीक ही हुआ दूत; पर शेष राज्यों का क्या हाल है?"

"आर्य! महाराज ने कुलूत के चित्रवर्मा, मलय के सिंहनाद, काश्मीर के पुष्कराक्ष तथा सिन्धु के सिन्धुसेन तथा अन्य छोटे छोटे गणराज्यों को अपनी ओर मिला लिया है। वे सब अपनी सेवा लेकर महाराज चंद्रगुप्त की आज्ञा पर कूच करने को तैयार हैं।"

"और पर्वतक से भी कुछ बातचीत हुई है या नहीं?"

"हां आर्य! मगध के आक्रमण के प्रत्यक्ष नेता तो वे ही हैं। भारत के भावी सम्राट् बनने की लालसा से वे भी दलबल सहित आ रहे हैं। आक्रमण के लिए कौन सा समय उपयुक्त होगा तथा आपका आदेश क्या है, इसीलिए मुझे यहां भेजा है।"

आर्य चाणक्य यह सुनकर फिर विचारों में लीन हो गए। कौन सा दिन इसके लिए उपयुक्त होगा, यही था उनके सामने मुख्य प्रश्न।

एकाएक जयघोष की तुमुल ध्वनि से उनकी शांति भंग हुई। दूत को उन्होंने जयघोष का कारण जानने के लिए भेजा। थोड़ी देर में दूत ने बताया कि अगले मास में इसी तिथि को राजकुमार सुमाल्य के यौवराज्याभिषेक की

घोषणा की जा रही है। आर्य चाणक्य की आंखों में एकदम चमक आ गई। क्रूर मुस्कान उनके होठों पर खेलने लगी। फिर दृढ़ता के साथ बोले, "दूत! अभिषेक की घोषणा हो चुकी है। अभिषेक होना ही चाहिए जाओ। चंद्रगुप्त से कहो कि अभियान का यही दिन उपयुक्त है। कुसुमपुर पहुंचने तक अपनी सेना की गतिविधि का पता न लगने पावे।"

अभिवादन करके दूत चला गया। आर्य चाणक्य भी अभिषेक की तैयारी में जुट गए।

10

मगध के राजभवन में आज चहल पहल मची हुई है। परिचारक एवं परिचारिकाएं इधर से उधर दौड़–धूप कर रहे हैं। राजमहिषी स्वयं आज बड़ी व्यस्त हैं। राजमहल की सब सजावट अपनी ही देखरेख में करवा रही हैं। कभी इस बेलि को यहां से हटवा कर वहां लगवाती हैं तो कभी चित्रों को इधर से उधर हटाती हैं। यौवराज्याभिषेक के पश्चात् राजमहिषी के पास आशीर्वाद के लिये आने को राजकुमार सुमाल्य के लिये प्रवेश द्वार विशेष रूप से बनाया गया है। राजमहिषी ने विज्ञ कलाकार की भांति उनका सुरुचिपूर्ण निर्माण करवाया है। महाराज नन्द के लिए आज विशेष सुरा ढाली गई है। राज्य भर की नर्तकियां आज कुसुमपुर में एकत्र हैं। प्रत्येक के लिए अपनी अपनी रुचि के वस्त्रभूषण दिये गए हैं। उनसे अपेक्षा है कि अपनी नृत्यकला का अनूठा प्रदर्शन करके आज महाराज, राजकुमार तथा दरबारियों के चित को लुभाकर मनमाना पुरस्कार पावें।

यह साज सजावट राजमहल तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पूरा कुसुमपुर आज सजाया जा रहा है। जनता के हाथ–पैर तो सजावट में लगे हैं परन्तु उसका हृदय उसमें नहीं है। वह तो हृदय में अत्याचार की वेदना लिये हुए अन्तस्तल में विद्रोहाग्नि की चिनगारी को उत्तप्त श्वास से प्रज्वलित करते हुए मुख पर हास्य एवं प्रसन्नता का दिखावा कर रही है। वह दीप–प्रकाश की तैयारी अभिषेक का आनन्द प्रकट करने के लिए नहीं कर रही पर इसलिए कि एक दीप से दूसरा दीप जलकर प्रलयंकारी ज्वाला प्रकट हो जिसमें

समस्त नन्द वंश भस्मीभूत हो जाय।

चारों ओर की इस चहल पहल में आर्य चाणक्य भी सम्मिलित हैं। परन्तु वे दूसरे ही अभिषेक की तैयारी में हैं। वे तो क्रांति के अग्रदूत की भांति व्यस्त हैं। अपने दूतों को उन्होंने चारों ओर लगा रक्खा है। सेनापति भागुरायण को, जिन्हें उन्होंने अपनी ओर फोड़ लिया था, आज सचेत कर दिया गया है। सेना को आज्ञा मिल चुकी है कि सेनापति के सिवाय और किसी की भी आज्ञा पालन न करें। सुमाल्य की विमातायें भी आज उसके प्राणों की गाहक हैं। कौटिल्य की कूटनीति ने मगध राज्य को चारों ओर से जकड़ रक्खा है।

महारानी तथा राजकुमार सुमाल्य बड़ी उत्सुकता से राजतिलक की घड़ी की बाट जोह रहे थे। काम में लगे हुए मनुष्य का समय घोड़े की चाल से दौड़ता है परन्तु आज एक क्षण का अवकाश न रहने पर भी इन दोनों का समय बहुत धीरे धीरे रेंगता सा जा रहा था। सुमाल्य भविष्य के सुनहले स्वप्नों के झूलों में झूल रहा था यदि कहीं उसे अपने भविष्य का सच्चा ज्ञान होता तो? परमात्मा ने भविष्य इसीलिए अंधकार में रक्खा है, ताकि वर्तमान के क्षणिक सुख में उस सुख का आनन्द लूटने से, अथवा वर्तमान के क्षणिक दुःख में अपनी शक्तियों का उपयोग करने से मनुष्य वंचित न रह जाय। जैसे तैसे वह घड़ी उपस्थित हुई। राजमहल से महाराज, युवराज, अमात्य तथा समस्त सभासदों की सवारी चल दी। बन्दीगण जयगान करते जाते थे। जयघोष से गगन–मण्डल गूंज उठा।

एकाएक अमात्य राक्षस को दूसरा ही जयघोष सुनाई पड़ा उनके कान अनिष्ट की आशंका से खड़े हो गए। सेनापति ने कहा कि महाराज के जयघोष की सुदूर हिमाचल से टकराकर लौटने वाली प्रतिध्वनि होगी। परन्तु यह तो विलासी नन्द के अत्याचारों से क्षुब्ध प्रजा की आहों की प्रतिध्वनि थी जिसकी गूंज विनाशकारी तूफान की भांति प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती थी। अमात्य राक्षस को संतोष नहीं हुआ। उसके हृदय में व्याकुलता थी। उसके कान आस पास के तुमुलनाद को न सुनकर दूर के ही जयघोष को सुन रहे थे। इतने में ही दूत दौड़ता हुआ आया। माथा ठोंक कर अमात्य राक्षस के सम्मुख खड़ा हो गया। अमात्य राक्षस ने व्याकुलता के साथ कुछ क्रुद्ध होकर पूछा, "बोलो दूत क्या है? यह अपशकुन कैसा? बोलो, शीघ्र बोलो।"

"प्रलय हो गया अमात्यवर! कुसुमपुर को शत्रुओं ने घेर लिया यदि शीघ्र ही उनको न रोका गया तो राजमहल तक पहुंच जावेंगे!" अमात्य राक्षस को एक दम धक्का लगा। उनकी शंका निर्मूल न रही। परन्तु उन्होंने अपने को संभाला। सवारी को एकदम रोक देने की आज्ञा दी गई। महाराज नन्द कुछ समझ न पाये। अमात्य राक्षस ने जाकर कहा, "महाराज! अभिषेक किसी अन्य दिन कीजियेगा। आज तो रण करना होगा। शत्रुओं ने नगर को घेर लिया है।"

कायरता का पुतला नन्द एकबार काँप गया। परन्तु दूसरे ही क्षण बोला, "अमात्य! हमारे शत्रु तो हमको सताते ही हैं, परन्तु तुम भी रंग में भंग कर देते हो। आज अभिषेक का दिन है। राज्य के कोने–कोने से नर्तकियां आई हैं और तुम कहते हो रण को चलो। जाओ, तुम और सेनापति, सेना लेकर रण करो। तुम लोगों को और सेना को इसीलिए तो वेतन मिलता है। तुम अपना काम करो और हमको अपना काम करने दो। सवारी को आगे बढ़ने दो।"

अमात्य क्रोध से दांत पीस कर रह गया। उसका विश्वास हो गया कि सर्वनाश निश्चित ही है। जैसे ही उन्होंने अपने घोड़े की बाग मोड़ी कि भीड़ में से एक चमचमाती हुई कटार आती हुई दिखी। विद्युत् के प्रकाश की भांति उसका प्रकाश भी आकाश में खेल गया तथा दूसरे ही क्षण वह नन्द के वक्षःस्थल पर खून से सनी हुई ग्रहण के चन्द्र की भांति चमक उठी। नन्द एक क्षण चीत्कार करके इस लोक को छोड़ गया।

चारों ओर कोलाहल मच गया। राजकर्मचारीगण घबड़ा गए। उनको समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाय। वे नन्द की लाश उठाकर राजमहल की ओर भागने लगे। एकाएक 'महाराज चंद्रगुप्त की जय' से आकाश–मण्डल गूंज उठा। राक्षस अमात्य समझ गए कि इस विद्रोह का नेता चंद्रगुप्त ही है। आज से पांच वर्ष पूर्व का दृश्य उनकी आंखों के सामने इस अशांत वातावरण में भी एक साथ उपस्थित हो गया। उन्होंने सेनापति को पुकारा। परन्तु सेनापति वहां नहीं थे। वे सीधे सेनास्थल पर पहुंचे तथा रणभेरी बजाने की आज्ञा दी। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जबकि उनकी आज्ञा की अवहेलना की गई।

"सेना तो सेनापति की ही आज्ञा मानती है आमात्यवर!" एक सैनिक ने अभिवादन करके नम्रतापूर्वक कहा।

"यदि सेनापति अनुपस्थित हो तो उच्च अधिकारियों की आज्ञा मानना तुम्हारा कर्त्तव्य है, सैनिक!" अमात्य ने कुछ रोष तथा प्रार्थना मिश्रित स्वर से कहा। परन्तु उनका तर्क निष्फल रहा। सैनिक निश्चेष्ट खड़े रहे।

राक्षस समझ गए कि सेना उनका साथ नहीं देगी! उनकी आंखों के सामने अन्धकार छा गया। परन्तु भीषण अंन्धकार में भी हाथ पर हाथ रख कर वे बैठने वाले नहीं थे। राजमहल के रक्षक आदि थोड़ा बहुत सैन्य एकत्रित करके सुमाल्य की अध्यक्षता में उन्होंने पर्वतक का सामना किया परन्तु उनकी थोड़ी सी सेना पर्वतक एवं चंद्रगुप्त की विशाल सेना के सामने कहां टिक सकती थी? प्रचण्ड ज्योति–पुंज को बुझाने की इच्छा रखने वाले पतिंगों की भांति वह भी नष्ट हो गई। सुमाल्य युद्ध में मारा गया।

पर्वतक मगध का सम्राट् बनने की इच्छा से आया था परन्तु जब विजय के बाद उसने चन्द्रगुप्त का जयघोष सुना तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके सहकारी सिन्धु, मलय, काष्मीर, कुलूत, बाहीक, अश्वक, क्षुद्रक, गालव, कम्बोज, गान्धार सबके सब चन्द्रगुप्त के साथ थे। और उससे भी बढ़कर मगध की सेना और जनता चंद्रगुप्त का स्वागत कर रही थी। राजा नहुष की भांति पर्वतक स्वर्ग से ढकेला जा रहा था। वह अपना सहायक खोजने लगा जो उसको फिर स्वर्ग के सिंहासन पर बिठावे। उसे अपने पुराने मित्र अलिक्सुन्दर की याद आई। इस तरह अपनी बाजी जाती देखकर पर्वतक ने अंत में देश को ही दांव पर लगा दिया। स्वार्थी व्यक्ति स्वार्थ–सिद्धि के लिए देश तक को बेचने को तैयार रहता है। यही पर्वतक ने किया। उसने सेलेउक् को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया। परन्तु उसके विपक्षी खिलाड़ी चाणक्य और चंद्रगुप्त थे। उनसे बाजी जीतना आसान नहीं था।

आर्य चाणक्य को ज्ञात हो गया कि पर्वतक ने अपना दूत सेलेउक् के पास सहायता के लिए भेजा है। पर्वतक को मार्ग से वैसे ही हटाना था, अब तो वह

देशद्रोही था। उसको दूर करने में विलम्ब करना भी पाप था। पर्वतक वीर होते हुए भी विलासी है, यह आर्य चाणक्य को विदित था। उसकी यह दुर्बलता उसकी मृत्यु का कारण हुई। एक दिन आर्य चाणक्य ने एक सुंदर विष–कन्या उसके पास भेजी। दूसरे दिन जब पर्वतक के शिविर से उसकी अर्थी निकली तो दुनियां ने जाना कि पर्वतक भी उसी लोक को गया जहां सब को जाना है।

समस्त उत्तर भारत के राजा अथवा गणराज्यों के अधिकारी मगध में उपस्थित थे। बड़े समारोह के साथ चंद्रगुप्त का अभिषेक हुआ। 'महाराज चंद्रगुप्त की जय' समस्त उत्तरापथ में गूंज गई। परन्तु यह तो भारत के भाग्योदय का उषःकाल था। पश्चिम की ओर भागता हुआ अंधकार इस बालरवि को ग्रसने का अभी भी निष्फल प्रयास कर रहा था।

11

पर्वतक अपने देशद्रोह का फल पा चुका, परन्तु उसका तीर तो छूट ही चुका था। छूटा हुआ तीर वापस नहीं आता। सेलेउक् को भारत के इस कुपूत का संदेश मिला। वह तो स्वयं ही भारत विजय की तैयारी में था। बिना भारत विजय किये उसको 'निकेतौर' (विजयी) की उपाधि धारण करना खटकता था। नियति भी उसकी इस उपाधि पर तथा इस उपाधि के धारण करने की इच्छा पर छिपे छिपे मुसकरा रही थी।

"क्या महाराज पर्वतक ने गान्धार प्रदेश का मार्ग यूनानी सेना के लिए सुरक्षित कर दिया है?" सेलेउक् ने पर्वतक के दूत से पूछा। अश्वकों के भीषण युद्ध की याद करके उसकी देह से पसीना छूटने लगा। उनसे फिर युद्ध करने की उसकी हिम्मत नहीं थी।

"सुरक्षित करने का प्रश्न ही कहां है महाराज! उत्तर भारत के समस्त राजा एवं अधिपतिगण तो मगध की राजधानी में अपनी अपनी सेना लिए पड़े हैं। सीमान्त से लेकर मगध तक भारत अनाथ जैसा है। बस मगध में चंद्रगुप्त से जरा लड़ना होगा।"

"चंद्रगुप्त से?" सेलेउक् ने एकदम चौंक कर कहा। दूसरे ही क्षण सेलेउक् ने गहरी सांस लेकर कहा, "चंद्रगुप्त तो बहुत बेढब व्यक्ति है। उसके कारण तो सम्राट् आलिक्सुन्दर को भारत छोड़ना पड़ा था।"

दूत ने सेलेउक् की हिम्मत बढ़ाने की गरज से कहा, " नन्दवंश को उखाड़ कर चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का बीज अभी बोया ही है। चाणक्य यद्यपि प्रयत्न कर रहा है कि यह बीज शीघ्र ही विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर ले, परन्तु महाराज! मगध में अभी भी ऐसे व्यक्ति हैं जो इस बीज को जमने नहीं देना चाहते। आप का आक्रमण तो अवश्य ही उत्तर शीतवायु के साथ आने वाली हिम–वर्षा के समान होगा"

"ऐसे कौन लोग हैं दूत! जो चंद्रगुप्त का विरोध कर रहे हैं?" सेलेउक् ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।
"नन्दवंश के प्रति भक्ति रखने वालों की कमी नहीं है महाराज। नन्द का अमात्य राक्षस ही है जो कि नन्दवंश के अभिशाप इस चंद्रगुप्त को फूटी आंखों भी नहीं देख सकता।"

"क्या महाराज पर्वतक ने उससे बातचीत नहीं की, दूत!"

"अवश्य की थी महाराज! परन्तु राक्षस इस बात से सहमत नहीं था कि मगध को चंद्रगुप्त के पंजे से छुड़ाकर महाराज पर्वतक मगध की गद्दी पर बैठें। वह तो नन्दवंश की अन्तिम ज्योति मगध राज धनानन्द के चाचा सर्वार्थसिद्धि को गद्दी पर बिठाना चाहता था।"

सेलउक् ने मन ही मन कहा, "मैं भी कब चाहता हूं कि प्रवर्तक मगध की गद्दी पर बैठे, और न बैठने ही दूंगा। क्या यूनान में शासकों की कमी है जो एक भारतीय भारत का राजा हो?" परन्तु प्रत्यक्ष बोला, "तब तो अमात्य राक्षस की सहायता मिलनी कठिन है।?"

"नहीं महाराज! मुझे भारत छोड़ने के पूर्व ही ज्ञात हो गया था कि सर्वार्थसिद्धि का वध करवा दिया गया है और फिर जब राक्षस को मालूम होगा कि आप भी महाराज पर्वतक की पीठ पर हैं तब उसे अवश्य ही हम लोगों की विजय का

विश्वास हो जायगा तथा हमारी ओर आने में ही अपना भला समझेगा। आप अपना दूत तो भेजिए।"

सेलेउक् ने स्वीकारोक्ति में केवल अपनी गर्दन हिलाई। भारत आक्रमण का उसने निश्चय कर लिया। दूत को विश्राम के लिये भेजकर अपने सेनापति एवं अन्य अधिकारियों को तुरन्त ही मंत्रणा के लिए बुलवाया। घन्टों तक मंत्रणा चलती रही। अलिक्सुन्दर पर कैसी बीती थी, यह वे सब जानते थे। भारत पर पुनः आक्रमण किया जाय इसकी हिम्मत नहीं होती थी।

"यदि इस बार भी पराजय हुई तो परिणाम बड़ा भीषण होगा निकेतौर" एक अनुभवी सेनापति ने कहा।

'पराजय और निकेतौर' दोनों साथ ही नहीं चल सकते सेनापति! निकेतौर पराजय नहीं जानता। भारत की इस अस्तव्यस्त दशा में तथा महाराज पर्वतक जैसा सहायक प्राप्त होने पर भी भारत विजय न हो सका तो फिर कभी नहीं हो सकेगा।

सेलेउक् ने अपने समस्त सेनापतियों को उत्साहित किया। भारत से कितना अपार धन मिलेगा, इसको खूब ही समझाया। सेनापतियों के मुंह में पानी भर आया। बस, युद्ध की घोषणा कर दी गई। सब सेना सुसज्जित होने लगी। शिरस्त्राण, खड्ग एवं शूल फिर एक बार सूर्य किरणों में चमचमा उठे।

सेना ने भारत की ओर कूच कर दिया। राक्षस के पास दूत तो पहिले ही भेजा जा चुका था। सब सोचते थे कि अमात्य राक्षस और महाराज पर्वतक भारत में उनका स्वागत करने को तैयार होंगे, परन्तु अन्दर ही अन्दर उनसे भी अधिक प्रबल शक्ति कार्य कर रही थी।

12

सिन्धु का शांत प्रवाह आज विक्षुब्ध हो उठा है। मगध की सेना उसके बाएं तट पर डेरा डाले पड़ी है। घोड़ों की हिनहिनाहट तथा हाथियों की चिग्घाड़ ने एकबारगी फिर तपोवन के तपस्वियों की शांति को भंग कर दिया है। सेना का

एक विभाग तो आठ दिन पूर्व ही यहां आ गया था, दूसरा आज ही मगध से आया है। उसके समस्त कर्मचारीगण अपने अपने शिविर के आयोजन में लगे हुए हैं।

"शत्रु को इस बार ऐसा कीलना होगा कि फिर सिर उठाने का नाम ही न ले," एक सैनिक ने कहा और पटकुटी की मेख पर जोर से हथौड़ा मारा।

"अलिक्सुन्दर की इतनी दुर्गति हुई, फिर भी ये यवन भारतविजय की कल्पना करते हैं काका! कितने धृष्ट हैं," पास ही पटकुटी का रस्सा पकड़े हुए एक युवक ने अधेड़ उम्र सैनिक से कहा।

"इसमें शत्रु की धृष्टता या हिम्मत का क्या प्रश्न है? हेमनाथ! यह तो हमारा ही दोष है। हमारी अराष्ट्रीय प्रवृत्तियां ही हमारे घर में घुसने को उकसाती हैं। परन्तु अब भारतवर्ष अलिक्सुन्दर के समय से अधिक संघटित एवं शक्तिशाली है। महाराज पर्वतक पुरुराज्य की रक्षा के लिए अलिक्सुन्दर से लड़े थे परन्तु आज तो हम भारत की रक्षा के लिए लड़ने आये हैं। कितना अंतर है तब में और अब में।"

"काका! तुम भी लड़े थे यवनों से?" हेमनाथ ने पूछा।

"मुझे वह सौभाग्य कहां मिल सका" अरुणाभ ने ठण्डी सांस लेते हुए कहा, "जब मैंने सुना कि अलिक्सुन्दर ने भारत पर आक्रमण किया है तो मेरी भुजाएं फड़कने लगी थीं : रक्त में उबाल आया, परन्तु महाराज नन्द की कायरता ने हमारे खड्ग को म्यान से न निकलने दिया, हमारा तीर तूणीर ही में रह गया। और भी हेमनाथ! तब हम में बहुत थोड़े ही मगध के आगे देख सकते थे। हरिशील से ही पूछो, (एक सैनिक की ओर इशारा करते हुए) इसने उस समय क्या उत्तर दिया था।"

"पिछली बातों की याद दिलाकर क्यों लज्जित करते हो भाई!" हरिशील बोला। "आज तो मैं समस्त भारत को अपना समझता हूं। आज दुगुने शत्रुओं का संहार करके अपना ऋण चुकाऊंगा। अमात्य राक्षस ही जब नन्दवंश और मगध के आगे नहीं सोच सकते थे, तो फिर हमारी क्या बात है?" कुछ संतोष मानते हुए हरिशील ने कहा।

अरुणाभ बोला, "आज तो अमात्य राक्षस की राष्ट्रीयता की प्रशंसा ही करनी होगी। पहिले तो वे महाराज चंद्रगुप्त का विरोध ही करते रहे परन्तु जब सेलेउक् का दूत उनके पास देशद्रोह का संदेश लेकर आया तो इस राष्ट्रीय आपत्ति के समय उन्होंने महाराज का साथ देना ही ठीक समझा। ज्ञात है उन्होंने सेलेउक् के दूत से क्या कहा? उन्होंने कहा था, "दूत जाओ, सेलेउक् से कह देना, 'पर्वतक भारत का अंतिम देशद्रोही था और वह वहां पहुंच चुका है जहां प्रत्येक देशद्रोही अपने पाप का प्रायश्चित करता है। आकाश कुसुम की भांति भारत में देशद्रोही ढूंढने का प्रयत्न न करना।"

"यही कारण है कि आज भारत इतना सशक्त है," रामवीर बोला। "सम्पति में देश का साथ न देने वाला क्षमा किया जा सकता है परन्तु विपत्ति में शत्रु के साथ मिलकर देशद्रोह करने वाला तो दूर रहा, देश का साथ न देकर चुप बैठने वाला भी क्षमा नहीं किया जा सकता।" इसलिए तो अमात्य राक्षस ने फिर मन्त्रिपद ग्रहण कर लिया है। सेलेउक् का आक्रमण तो हमारे लिए वरदान–स्वरूप है। इसने हम सबको कितना निकट ला दिया। आज सम्पूर्ण भारत एक आवाज से बोलता है और एक इशारे पर काम करता है। इस एकता में कितनी शक्ति है, यह सेलेउक् को भी मालूम हो जायगा," कहते कहते हरिशील जोश में आकर खड़ा हो गया। इतने में भेरी बजी मानो हरिशील ने जिस एकता का वर्णन किया था, उसे वह प्रत्यक्ष दिखाना चाहती हो।

13

सिन्धु के तट पर सैनिकों को अधिक बाट नहीं जोहनी पड़ी। दो ही दिन बाद गुप्तचर ने समाचार दिये कि सेलेउक् अपनी विशाल सेना लेकर मगध पर आक्रमण करने की तैयारी से कुछ ही दूर डेरा डाले पड़ा है। चंद्रगुप्त ने यही उचित समझा कि युद्ध सिन्धु के तट पर ही किया जाय। अलिक्सुन्दर यदि वितस्ता के तट पर हारा था तो सेलेउक् को उससे भी उत्तर–सिन्धु के ही तट पर पराजित किया जाय।

सेलेउक् ने दूसरे दिन सिन्धु के दूसरे तट पर चंद्रगुप्त की सेना देखी तो उसकी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया और उसके मन के लड्डू चूर हो गए। सोच रहा था कि वह पाटिलपुत्र तक बे–रोक–टोक चला जायगा परन्तु यह तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़े। भारत के अंदर झांकते ही मुंह पर तमाचा पड़ने की आशंका हो गई। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसकी सेना में कानाफूंसी होने लगी। सैनिक गण कहने लगे कि उनको धोखा दिया गया है। उन्हें तो बताया गया था कि मगध तक वे निर्द्वन्द्व लूटते पाटते चले जायंगे और वहां चंद्रगुप्त, से जोकि स्वयं अभी अस्थिर है, युद्ध करना पड़ेगा। परन्तु यहां तो लूट दूर रही, प्रथम ही युद्ध पाले पड़ा।

सेलेउक् ने सैनिकों को बताया, "हमारे लिए आज बड़े सौभाग्य का विषय है। महाराज अलिक्सुन्दर जब भारत में आए थे तब उनको अनेक युद्ध करने पड़े थे। प्रत्येक राजा से, प्रत्येक गण के अधिपति से उनका युद्ध हुआ था। एक एक चप्पा भूमि के लिए मनों रक्त बहाना पड़ा था। परन्तु आज तो हमारे सामने केवल एक ही युद्ध है। सामने पड़ी हुई छोटी सी सेना को जहां हमने धराशायी किया कि दूसरे ही क्षण समस्त भारत हमारे चरणों पर लोटता हुआ दिखाई देगा। फिर युग–युगों तक इसकी अपार धन–राशि से हम अपने कोष भरेंगे। बस एक बार दृढ़ता से आक्रमण करने की आवश्यकता है। सिन्धु के उस पार हमारा शिकार पड़ा हुआ है। वहीं सैनिकों, देवाधिदेव ज्यूस के सम्मानार्थ गोबलि का आयोजन होगा।"

'यवनपति की जय!' 'निकेतौर की जय!' से सिन्धु का पश्चिमी आकाश गूंज उठा। पूर्वी तट पर इस गूंज की एक क्षीण ध्वनि सुनाई दी। वर्षाकाल की पूर्वी हवाएं भी तो भारत के इस शत्रु को पश्चिम की ओर खदेड़ रही थी। इस जयघोष को वे इस तट पर कैसे आने देतीं। प्रकृति भी वीरों की सहायता करती है।

सेलेउक् ने उसी प्रकार चालाकी से रात्रि के अंधकार में सिन्धु पार करने का प्रयत्न किया जिस प्रकार अलिक्सुन्दर ने वितस्ता को पार किया था। परन्तु पूर्व अनुभव से सीख न लेने वाले मूर्ख लोग भारत में नहीं रहते थे। चंद्रगुप्त केवल वीर एवं शूर ही न था अपितु वह एक कुशल सेनापति भी था जो कि

युद्ध विद्या की निपुणता के कारण रण के समस्त दांव–पेंच भी जानता था। उसने अपनी सेना का एक विभाग नदी के ऊपर तथा दूसरा नीचे नदी पार करके सेलेउक् की सेना के पार्श्व पर आक्रमण करने को भेज दिया। कुछ चुने हुए धनुर्धारियों को नदी के उत्तर में झाड़ियों के पीछे बिठा दिया। यहां नदी के बीच में एक द्वीप था। इसी स्थान पर सेलेउक् ने नदी पार करने की योजना बनाई थी।

अंधकार में हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। सेलेउक् की सेना की एक टुकड़ी दबे पांव उक्त स्थान की ओर बढ़ती जाती थी। किनारे पर नावों का बेड़ा तैयार था। सैनिक एक एक करके नाव पर बैठे। डांड़ की छप–छप रात्रि की शांति को भंग करने लगी। एक एक करके नावें द्वीप के किनारे आ लगीं। सैनिकगण उतरे। उनकी एक मंजिल तय हो गई। अपनी सफलता पर विश्वास हो गया। "हिन्दू बड़े भोले होते हैं, वे केवल आमने–सामने ही लड़ना जानते हैं।" एक सैनिक ने मन ही मन कहा। द्वीप से फिर बाएं तट की ओर नावें चलने लगीं। जैसे ही मांझी ने डांड़ का हाथ मारा कि एक सनसनाता हुआ तीर आया और नाविक के वक्ष–स्थल को बेधता हुआ पार निकल गया। नाविक पानी में गिर गया। नदी में आवाज हुई। इससे पूर्व कि सैनिक गण कुछ भी समझ पावें, सनसनाते हुए सहस्त्रों तीरों से विद्ध होकर वे एक एक करके गिरने लगे। यवन सेना में हाहाकार मच गया। अंधकार के कारण वे यह भी न जान सके कि यह बाण–वर्षा कहां से और कौन कर रहा है। एक सैनिक ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। पास ही सैनिक बोल उठा, "उधर निशाना लगाओ।" बस दूसरे ही क्षण दोनों ही सैनिक चीख मारकर गिर पड़े। चन्द्रगुप्त के सैनिक शब्दवेधी बाण चला रहे थे। अन्धकार में भी वे अपना लक्ष्यवेध करने की योग्यता रखते थे। सिन्धु का जल लाल हो रहा था।

यवन सेना को वापस लौटने की आज्ञा हुई। छाती के स्थान पर पीठ पर वार सहने का निश्चय हुआ। किनारे पर पहुंचे न पहुंचे कि सामने से भी आक्रमण हुआ। चंद्रगुप्त की सेना नदी पार कर चुकी थी। सेलेउक् घबड़ा गया। उसने अपनी बची हुई सेना को बुलाने के लिये दूत भेजा परन्तु वह भी नदी के नीचे की ओर से पार करने वाली चंद्रगुप्त की सेना की टुकड़ी के आक्रमणों से व्यस्त थी। यवन सैनिकों पर चारों ओर से मार पड़ने लगी। उनमें त्राहि त्राहि मच गई।

अरुणोदय के समय पूर्व और पश्चिम दोनों ओर ही रक्ताभा दृष्टिगोचर होती थी। पश्चिम में यवनों के रक्त से धरा लाल थी तो पूर्व में क्षितिज के मुख पर भारत के सपूतों की वीरता के कारण प्रसन्नता की लाली थी। दिन निकलते आधे से अधिक यवन समाप्त हो चुके थे। दिन भर और युद्ध चला, परन्तु यवनों के पांव उखड़ चुके थे। सेलेउक् के प्रयत्न उनको न रोक पाये। अंत में उसने संधि की प्रार्थना करने में ही अपनी कुशल समझी।

दोनों ओर से युद्ध रोक दिया गया। संधि की शर्तें तय होने लगीं। सच में तो शर्तें तय करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। चंद्रगुप्त विजयी था। वह जो कुछ भी कहता, सेलेउक् को मानना ही पड़ता। परन्तु भारत ने अपनी सफलता एवं शक्ति का कभी ऐसा नग्न परिचय नहीं दिया है। साथ ही पर्वतक की भांति इस बार संधि का दिखावा करके चंद्रगुप्त को मूर्ख भी नहीं बनाया जा सकता था। स्वयं आर्य चाणक्य ने संधि की शर्तें तय कीं। इसके अनुसार सेलेउक् ने प्रथम तो फिर कभी भारत पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की। अपने राज्य के चार प्रांत चंद्रगुप्त को दिये तथा अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी चंद्रगुप्त के साथ कर दिया। उसका दूत मेगस्थने भी बहुत काल तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। इस प्रकार चंद्रगुप्त का राज्य समस्त मध्य–एशिया तक फैल गया। संघटित तथा शक्तिशाली भारत क्या कर सकता है, यह इस युद्ध ने दिखला दिया।

इसके पश्चात् चंद्रगुप्त को कुछ और छोटे–छोटे युद्ध भारत ही में दक्षिण में करने पड़े। चंद्रगुप्त का उद्देश्य तो उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम समस्त भारत को एक–सूत्र मे बांधना था। और यह उनकी महानता है कि बारह वर्ष में ही एक विशाल साम्राज्य का निर्माण करके उन्होंने अपने इस ध्येय की पूर्ति की।

14

सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य उन कतिपय इतिहास–निर्माताओं में से हैं जिनको पग–पग पर सफलता ने वरण किया। इसका श्रेय जहां उनकी तीव्र लगन एवं अनवरत अध्यवसाय को है वहां उनकी उस विलक्षण बुद्धि को भी है

जिसके कारण उन्होंने अपने हाथ से किसी भी अवसर को नहीं जाने दिया। शिकारी की भांति वे उचित अवसर की ताक में रहे तथा अवसर आने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सर्वस्व की बाजी लगाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। कूटनीति के समस्त दांव–पेंच अपने गुरु एवं सहायक आर्य चाणक्य से उन्होंने व्यवहारिक रूप में सीखे थे।

वे अत्यंत वीर एवं साहसी थे। उन्होंने सदैव अपनी सेना के आगे रहकर युद्ध किया, विपत्तियों मे स्वयं सबसे पहिले कूदे और फिर अपने सहायक देशभक्तों को आह्वान किया। अपने साहस एवं वीरता के कारण ही वे प्रथम तो अलिक्सुन्दर के विरुद्ध विद्रोह करके और फिर सेलेउक् पर विजय पाकर पंजाब, सीमांत और पश्चिम भारत की समस्त वीर जातियों से सम्मान एवं श्रद्धा पा सके। उनकी निर्भीक एवं स्वतंत्र प्रकृति का पता तो उस घटना से ही लग जाता है जिसमें वे अलिक्सुन्दर से मिले और उसे काफी जली कटी सुनाई। इतने निर्भीक एवं स्पष्टवादी होने पर भी वे सदैव लोकप्रिय रहे। इसी लोकप्रियता के कारण मगध के सिंहासन पर बैठने के पूर्व ही वे जनता के हृदय–सम्राट् बन चुके थे। अपने इसी गुण के कारण मालव, क्षुद्रक जैसे गणराज्यों के नागरिकों पर, जो कि प्रजातंत्री शासन के कारण अत्यंत स्वतंत्र मनोवृति के थे, आधिपत्य जमा सके। उनकी लोकप्रियता तथा भारत के बड़े बूढ़े सबके हृदय में आदर का स्थान प्राप्त करने का कारण था उनकी निःस्वार्थ देशभक्ति। यदि अपने ही लिये उन्होंने ये सब प्रयत्न लिये होते तो शायद देश उनका इतना साथ न देता।

सम्राट् चंद्रगुप्त अपने काल के एक महान् विजेता भी थे; परन्तु अपनी विजय के मद में मत्त होकर उन्होंने शत्रु के प्रति कभी क्रूरता का बर्ताव नहीं किया। हिन्दू संस्कृति की अमूल्य निधि सहिष्णुता को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। परन्तु सहिष्णुता, दया और मैत्री के बड़े–बड़े शब्दों के मायाजाल में फंसाने वाले शत्रु की दाल भी उन्होंने नहीं गलने दी। विजय के पश्चात् न तो अलिक्सुन्दर के समान उन्होंने विजित राजा का निर्दयता–पूर्वक वध करवाया और न पर्वतक के समान विजयी होने पर भी विजित के चंगुल में फंसे। सेलेउक् को हराकर उससे उन्होंने सम्मानपूर्ण मैत्री की, परन्तु अपने देश के हित और गौरव को भी आंच नहीं आने दी।

वे एक महान विजेता ही नहीं, एक सुयोग्य षासक भी थे। साम्राज्य को दृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने के लिये उन्होंने बहुत से कार्य किए। अपनी प्रजा एवं देशवासियों के हित में उन्होंने कोई कोर–कसर नहीं की। देश की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक सर्वांगीण उन्नति के लिये सब प्रकार के कार्यों का भार मौर्य शासक ने अपने ऊपर ले रक्खा था। साम्राज्य की इतनी सुन्दर व्यवस्था थी कि पाटलिपुत्र से संचालित सम्राट् की प्रत्येक आज्ञा का पालन आज के भारतीय साम्राज्य से दुगुने विस्तृत साम्राज्य के कोने कोने में बिना किसी अपवाद के होता था।

सम्राट् चंद्रगुप्त स्वयं अत्यधिक परिश्रमी थे। जिस परिश्रम से उन्होंने साम्राज्य प्राप्त किया था, उसी प्रकार परिश्रम एवं दक्षतापूर्वक शासन के कर्तव्य का पालन किया। शासन के प्रत्येक विभाग का उनको ज्ञान था तथा समय समय पर उनकी जांच–पड़ताल भी करते रहते थे। न्यायालय में स्वयं जाकर बैठते थे तथा जनसाधारण की भी उनके पास तक पहुंच थी। निश्चय ही कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित आदर्श सम्राट् का चित्र उन्हीं के आधार पर बना है। 'आदर्श सम्राट् महाकुलीन, दैवबुद्धि, दीर्घदर्शी, धार्मिक, वीर, उत्साही, दृढ़–निश्चयी एवं स्वार्थ–त्यागी होना चाहिए। उसका व्रत कर्तव्य के लिए सदा तैयार रहना है; उसका यज्ञ शासन संबंधी कार्यों को ठीक ठीक करना है; सब प्रजा को समान देखना उसका पुण्य है, प्रजा के सुख में उसका सुख प्रजा के हित में उसका हित है; उसको अपना नहीं किन्तु प्रजा का हित ही प्रिय होना चाहिए।' राष्ट्र की स्वतंत्रता और शक्ति के केन्द्र सम्राट् चंद्रगुप्त निश्चय ही इस आदर्श के अनुयायी थे।

सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य की विजयों, उनका साम्राज्य–निर्माण, उनकी सफल शासन–प्रणाली, तथा प्रजाहित के कार्यों की दृष्टि से वे न केवल भारत के ही वरन् संसार के सफल विजेताओं, राष्ट्र–निर्माताओं और शासकों में एक उच्चस्थान पाते हैं। इसीलिए उन्हें मुद्राराक्षस में विष्णु का अवतार तक कहा है। जिस दृष्टिकोण से हमने अपने अन्य महापुरुषों और राष्ट्र–निर्माताओं को विष्णु का अवतार माना है, उसी दृष्टि से देखा जाय तो मुद्राराक्षस का कथन किसी भी प्रकार से अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता।

उपसंहार

आंखो में एक स्वप्न और हृदय में महत्वाकांक्षा को प्रदीप्त करने वाली देशभक्ति की चिनगारी लिये हुए दो हिन्दू युवकों ने क्या कर दिखाया यह हमने इन पृष्ठों में देखा। दोनों ही के मन में अपनी मातृभूमि की आत्मा को जगाकर हिमालय से समुद्र पर्यन्त सहस्त्रयोजन–व्यापी एक चातुरन्त राज्य प्रतिष्ठापित करने की धुन समाई हुई थी, और दोनों ही थे धुन के पक्के। मातृभूमि की इस सेवा में जहां एक ने अपनी मेधा को लगाया वहां दूसरे ने अपनी भुजाओं को। दबाकर कुचल डालने वाली आपत्तियों के भार को एक ओर फेंक कर जब जब भारतवर्ष ने अपना मस्तक गौरव से ऊंचा उठाया है तब तब देश में राष्ट्र की मूलभूत क्षात्र और ब्राह्म शक्तियों का उदय हुआ है। तभी उनके प्रतिनिधि रूप में साथ साथ वाल्मीकि और रामचन्द्र, व्यास और श्रीकृष्ण, याज्ञवल्क्य और जनक, रामदास और शिवाजी जैसे दो दो महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है। चाणक्य और चंद्रगुप्त की भी ऐसी ही एक जोड़ी थी। इन दोनों की महानता अलग अलग नहीं आँकी जा सकती।

हमारी दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण विदेशियों और विधर्मियों के अत्याचारों के फलस्वरूप हुतात्मा होने वाले देशभक्तों के विद्युत–प्रकाश को ही हम देख पाते हैं। इन दोनों के जीवन का प्रत्येक क्षण देश के ही लिये व्यतीत हुआ। देश के लिये कैसे जिया जाय इसकी शिक्षा इनका प्रत्येक कार्य एवं अर्थशास्त्र का प्रत्येक शब्द दे रहा है। देश–भक्तों की लम्बी परम्परा में देश की बलिदेवी

पर प्राणों को अर्पण करने वाले देशभक्तों के विद्युत्प्रकाश से जहां दो चार पग आगे बढ़कर घनान्धकार में आंखों की स्वाभाविक शक्ति को भी खोकर हम निराश बैठ जाते हैं वहां इस नन्दादीप के प्रकाश में अध्यवसाय नीति एवं सातत्य का पाठ लेकर सहज अपने मार्ग पर जा सकते हैं। पाटलिपुत्र का गत वैभव एवं तक्षशिला के खण्डहर जहां एक ओर अपने विगत वैभव की याद दिलाते हैं वहां उस कर्म–योग एवं अक्षुण्ण निष्ठा का भी संदेश देते हैं जिसने उन्हें वह वैभव प्रदान किया।

हम सम्राट् चंद्रगुप्त और मंत्री चाणक्य के पीछे देशभक्त चन्द्रगुप्त एवं देशभक्त चाणक्य को देखें। साम्राट्य एवं मंत्रित्व तो उनकी परिस्थिति विशेष की स्थिति थी, उनका साधारण स्वरूप, उनकी यथार्थता तो उनके एक भारतवासी, एक आर्य, एक हिन्दू के नाते ही जानी जा सकती है। उनको सम्राट् और मंत्री बनने की लालसा नहीं थी। उनकी तो कामना थी यवनों के चंगुल से भारत की स्वतंत्रता की रक्षा तथा वह सदैव स्वतंत्रता का उपभोग कर सके इसके लिए उसे शक्ति सम्पन्न बनाना। इसीलिए तो आर्य चाणक्य ने घोषणा की है, "न त्वेवार्यस्य दास्यभावः" (आर्य कभी भी गुलाम नहीं बनाया जा सकता)।

हम नित्य प्रति महान् राष्ट्र–निर्माताओं का स्मरण करते हैं और स्मरण करते हैं उन अगणित हिन्दू वीरों का जो इन दोनों के हृदय की ज्योति से ज्योतित होकर उस प्रकाश–पुंज को प्रकट कर सकें। जिसमें भारत के दुःख, दैन्य और दास्य भस्मीभूत हो गए। हम उस महान संस्कृति एवं समाज को भी आदर के साथ स्मरण करते है जिन्होंने ऐसी विभूतियां उत्पन्न की। उस भारतभूमि को प्रणाम है जिसने इस महान स्फूर्ति–केन्द्र को जन्म दिया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय (25 सितंबर, 1916 – 11 फरवरी, 1968) एक कुशल संगठनकर्ता एवं समाज सुधारक के रूप में विख्यात हैं। वे भारत के श्रेष्ठतम चिन्तकों में से एक थे। उनके विचार, चिन्तन एवं दृष्टिकोण में राजनीति एवं संस्कृति का परस्पर इतना प्रगाढ़ संबंध था कि दोनों को विभक्त कर पाना कठिन है। भूमि, जन एवं संस्कृति परस्पर मिलकर राष्ट्रीयता का निर्माण करते हैं। एकात्मभाव भारत की राष्ट्रीयता है, राष्ट्रीय पहचान है।

दीनदयाल उपाध्याय भारत, भारतीयता एवं मौलिकता के प्रबल पक्षधर थे। सांस्कृतिक रूप से मानवीय एकात्मता की तार्किक संगति में उनके विचार साम्राज्य विरोधी एवं मानवता के संपोषक हैं। उनके विचार प्रखर राष्ट्रवाद, देश के प्रति अटूट श्रद्धा एवं अटल निष्ठा तथा मानवमात्र के प्रति कल्याण के भाव से ओतप्रोत हैं। वे अर्थनीति के प्रखर अध्येता थे। उनका उपभोगवादी प्रवृत्ति से घोर विरोध था। वे इसे अमानवीय मानते थे। वे उत्पादन में संवृद्धि, उपभोग में संयम तथा वितरण में समता के पक्षधर थे।

उनके विचारों की परिणति 'एकात्म मानववाद' के विराट् दर्शन के रूप में हुई। उन्होंने व्यष्टिपरक विचारों को समष्टिगत विचारों का विस्तीर्ण सिंधु प्रदान किया तथा जनमानस को संकीर्ण जड़ता से मुक्त करके विराट् तत्व से परिचित कराया। दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन भारतीय मनीषा की दार्शनिक–बौद्धिक–सांस्कृतिक ज्ञान राशि की सन्निधि तथा आर्ष परंपरा की शेवधि है। उनका साहित्य हमारी अमूल्य सांस्कृतिक संपदा का अपरिहार्य अंश है। उनकी कृति 'पोलिटिकल डायरी' सार्वजनिक जीवन को समझने, चुनौतियों तथा जटिलताओं का सामना करने एवं दैनंदिन जीवन की न्यूनताओं से मुक्ति का मार्ग प्र स्त करती है।

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

डी–51, प्रथम तल, हौजखास,नई दिल्ली–110016
दूरभाषः 011-26524018, फैक्सः 011-46089365
ईमेलः indiapolicy@gmail.com
वेबसाइटः www.indiapolicyfoundation.org

ISBN 978-81-925223-6-4

मूल्यः 50 रुपये